# अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

वर्ष: 7 अर्द्ध वार्षिक अंक: 1

बसंत पंचमी माघ सुदी पंचमी विक्रम संवत 2079 26 जनवरी 2023

## श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम

वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झाँसी (उ.प्र.)

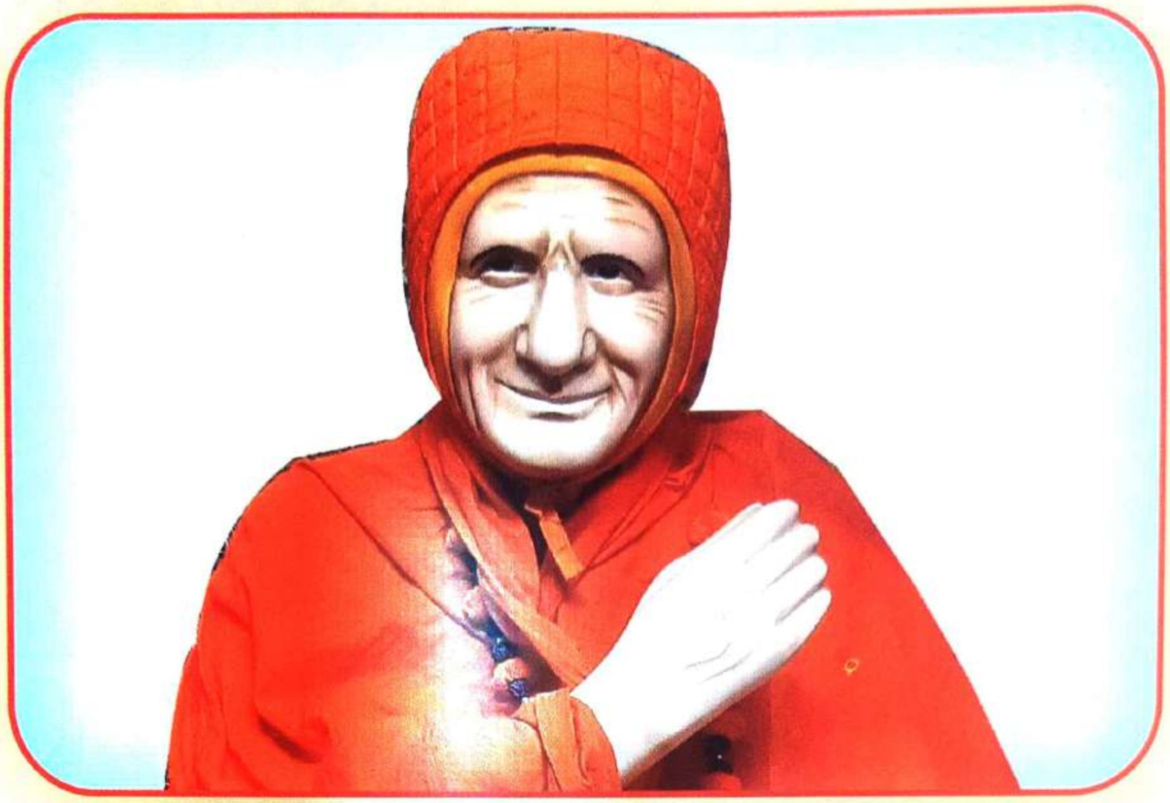

## पूज्य स्वामी जी अखण्डानन्द जी महाराज (पीली कोठी)

### प्रार्थना

कर प्रणाम तेरे चरणों में लगता हूँ अब तेरे काज । पालन करने को आज्ञा तव मैं नियुक्त होता हूँ आज।।
अन्तर में स्थित रहकर मेरे बागडोर पकड़े रहना। निपट निरंकुश चचंल मन को सावधान करते रहना।।
अन्तर्यामी को अन्तः स्थित देख सशङ्कित होवे मन। पाप-वासना उठते ही हो नाश लाज से वह जल-भुन।।
जीवों का कलरव जो दिनभर सुनने में मेरे आवे। तेरा ही गुणगान जान मन प्रमुदित हो अति सुख पावे।।
तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि! तुझमें यह सारा संसार। इसी भावना से अन्तरभर मिलूँ सभी से तुझे निहार।।
प्रतिपल निज इन्द्रिय समूह से जो कुछ भी आचार करूँ। केवल तुझे रिझाने को, बस तेरा ही व्यवहार करूँ।।

## आश्रम के प्रतिदिन के कार्यक्रम

| | | |
|---|---|---|
| प्रातःकाल 4.30 बजे से 5:30 बजे तक | - | प्रभाती ब्रह्म कीर्तन |
| प्रातःकाल 5:30 | - | आरती |
| प्रातःकाल 5:35 बजे से 7:00 बजे तक | - | योगाभ्यास |
| प्रातःकाल 8:00 बजे से 9:00 बजे तक | - | गीता स्वाध्याय |
| सायंकाल 4:00 बजे से 6:00 बजे तक | - | योगवशिष्ठ महारामायण की कथा तथा सन्त महापुरूषों द्वारा वेदान्त के भजन कीर्तन व उपदेश |
| सायंकाल 4:00 बजे से 6:00 बजे तक | - | 16 अक्टूबर से 15 अप्रैल - शीतकालीन समय |
| सायंकाल 3:00 बजे से 5:00 बजे तक | - | 16 अप्रैल से 15 अक्टूबर - ग्रीष्मकालीन समय |

## आश्रम के वार्षिक कार्यक्रम

गुरू पूर्णिमा (आषाढ़ सुदी पूर्णिमा)

पुण्य स्मृति बसन्त पंचमी (माघ सुदी पंचमी)

# अखण्ड विशम्भरानन्द ज्ञान सरिता


## वर्ष 7, बसंत पंचमी, माघ शुक्ल पंचमी विक्रम संवत् 2079

स्वामी श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता संत आश्रम के लिये प्रकाशक, मुद्रक, प्रधान सम्पादक श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा द्वारा अमर ज्योति प्रेस, झांसी द्वारा मुद्रित किया गया वं श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम, लहर देवी रोड, वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झांसी से प्रकाशित।

सम्पादक– श्री प्रमोद कुमार गुप्ता

पं.सं. UPHIN/2016/73634
भारत सरकार

**संस्थापक एवं संरक्षकः**
श्री आर. के. मिश्रा
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम धर्मार्थ समिति
लहरगिर्द, नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)

**आदि सम्पादकः**
ब्रह्मलीन परम पूज्य श्रद्धेय स्वामी शुकदेवानन्द जी

**प्रधान सम्पादकः**
श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा

**सम्पादकः**
श्री प्रमोद कुमार गुप्ता

**सम्पादन मण्डलः**
श्रीमती कुमकुम बिसरिया
डॉ. रंजना शर्मा
श्री अरविन्द देवलिया
श्री वैभव वर्मा

**प्रकाशन कार्यालयः**
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम
धर्मार्थ समिति लहरगिर्द, नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)
पिनकोड–284 003
फोन– (0510) 2360251

**अर्द्धवार्षिक**

मूल्य : निःशुल्क वितरण के स्वाध्याय हेतु

–मुद्रक–
**अमर ज्योति प्रेस**
सदर बाजार, झाँसी, मोबा. : 9415030917

# अनुक्रमणिका


| क्र.स. | विवरण | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| 1. | सम्पादकीय | राजेन्द्र कुमार मिश्रा | 03 |
| 2. | पुरोवाक् | प्रमोद कुमार गुप्ता | 04 |
| 3. | प.पू. स्वामी शुकदेवानन्द जी का योग शिविर में प्रवचन – चतुर्थ पुष्प | प्रमोद कुमार गुप्ता | 05 |
| 4. | नानुशोचन्ति पण्डिताः | ब्र. राघवेन्द्र चैतन्य | 07 |
| 5. | गुरु कृपा | ब. राघवेन्द्र चैतन्य | 08 |
| 5. | जीवन यात्रा | ब्रह्मचारिणी गार्गी चैतन्य | 09 |
| 6. | विज्ञान या अध्यात्म–जीवन की उत्पत्ति का रहस्य | राजेन्द्र कुमार मिश्रा | 11 |
| 7. | सद्गुरु भगवान की पुण्य स्मृति | स्वामी भूमानन्द | 13 |
| 8. | वैदिक वाङ्मयः | पं. चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी | 14 |
| 9. | तुरीय अवस्था | प्रमोद कुमार गुप्ता | 15 |
| 10. | तपस्या | रंजना शर्मा | 17 |
| 11. | शबरी और गीधराज की महानता | अरविन्द कुमार देवलिया | 20 |
| 12. | मन पर नियंत्रण | वैभव वर्मा | 23 |
| 13. | संकलित 'कड़वे प्रवचन' | पंकज मिश्रा | 24 |
| 14. | ज्ञानानुसार आचरण | वैभव वर्मा | 25 |
| 15. | संस्कृति और जीवन मूल्य | डा. अनिल कुमार दुबे | 26 |
| 17. | साधना का सेतु | कुमकुम रिछारिया | 28 |
| 16. | सद्गुरु चालीसा | | 31 |
| 17. | सद्गुरु आरती | | 32 |


## – पाठकों से निवेदन –

Website : www.akhandavedanta.com

E-mail : neerajnikhra@gmail.com, diszvaibhav@gmail.com

गुरु भक्त अपनी ई–मेल पर "अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता" पत्रिका निःशुल्क चाहते हैं तो उपर्युक्त ई–मेल आईडी पर सम्पर्क कर सकते हैं।

# 'संपादकीय

भारतीय दर्शन (सनातन धर्म) में मुख्य रूप से छह (6) दर्शनों की प्रासंगिकता बतलाई गई है। इन षड्शास्त्र अथवा षड्दर्शन के नाम हैं– (1) वैशेषिक, (2) न्याय, (3) सांख्य, (4) योग, (5) पूर्व मीमांसा, (6) उत्तर मीमांसा या वेदान्त। इन दर्शनों के रचने का उद्देश्य लोगों को विचार स्वातन्त्र की शिक्षा प्रदान कराना और उनकी बुद्धि का तर्क संगत विकास कराना। जिससे मनुष्यों का कल्याण हो तथा उनके लोक और परलोक का सुधार हो। इन छह दर्शनों के रचनाकार दार्शनिक मुनि कहलाते हैं। जिनके निम्नानुसार नाम हैं– कणाद, गौतम, कपिल, पतंजलि, जैमिनी एवं व्यास। मुनि का अर्थ है मनन करने वाला, तर्क से निश्चय करने वाला वह पुरुष जो सही (सत्) तर्क से सच्चाई का ठीक पता लगा लेता है और युक्ति द्वारा अन्य का निश्चय बिठा देता है। सनातन धर्म में ऋषि और मुनि दोनों बड़े आदर के शब्द हैं। जो मन्त्रदृष्टा हुए, जिन्होंने धर्म को साक्षात् किया। वह ऋषि कहलाये और जिन्होंने इन गुण सच्चाइयों (तत्व ज्ञान) का मनन किया और कराया वे मुनि कहलाये।

प्रश्न है कि ऋषियों ने धर्म को साक्षात् किया है तो धर्म कहते किसको हैं और उसमें फल क्या मिलता है। "यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धि स धर्मः।" अर्थात् जिससे यथार्थ उन्नति और परम कल्याण (मोक्ष) की सिद्धि होती है, वह धर्म है। अभ्युदय का अर्थ है तत्त्वज्ञान होना, उसी के द्वारा मोक्ष की सिद्धि होती है। आत्मबल यथार्थ उन्नति है और मोक्ष मनुष्य की परम कल्याण की स्थिति है। धर्म के यह दोनों विवेचक हैं, फल है। आत्म बल से लोक-परलोक दोनों सुखदायी बन जाते हैं। यदि कोई विपद् भी आ जाती है तो आत्मबल इसको भी सम्पद् ही बना लेता है। आत्मबल के साथ सम्पदाएं भागी चली आती हैं। आत्मबल वाला विपद् में भी सम्पद् के समान ही संतुष्ट रहता है। प्रत्युत विपद् उसके आत्मबल को और बढ़ा देती है। अतः आत्मबल ही मनुष्य की यथार्थ उन्नति है। यही परलोक में साथ जाकर उच्च जन्म और स्वर्ग के हेतु हैं। यह धर्म ही है जो अन्तःकरण को शुद्ध बनाता है और तत्त्वज्ञान प्राप्त कराकर मोक्ष का कारण बनता है।

आज बसन्त पंचमी के दिन गुरुदेव श्री विशम्भरानन्द जी अपने पार्थिव शरीर को त्याग कर परमात्म तत्व में विलीन हो गये थे। गुरुदेव का पूर्ण जीवन तत्वज्ञान के मनन और वेदान्त के प्रसारण में समर्पित था। वह तत्वज्ञानी स्वयंप्रकाश ब्रह्मनिष्ठता की परम पदवी पर विराजित थे। अपने स्व अनुभव एवं स्वअनुभूति के द्वारा जनमानस को आत्मज्ञान के मार्ग में अग्रसर करने के प्रयत्न में उन्होंने अपना पूरा जीवन अर्पित कर दिया। वेदान्त जैसे नीरस विषय को सरस बनाकर आत्मज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान (तत्वज्ञान) जैसे जटिल प्रश्न को साधारण रूप से विवेचन करके सर्वग्राही बनाने का श्री सद्गुरु भगवान का एक मात्र उद्देश्य रहा है। ऐसे ब्रह्म स्वरूप गुरुदेव भगवान के चरणों में सादर नमन करता हूँ। जिनका स्मरण करते ही अदृष्ट अर्थ खुल जाते हैं। ब्रह्मज्ञान का रहस्य खुल जाता है और सम्पूर्ण आत्मबोध हस्तगत हो जाता है। ऐसे तत्वज्ञाता ब्रह्मनिष्ठ गुरु चरणों को मेरा बारम्बार नमस्कार।

– राजेन्द्र मिश्र

# पुरोवाक्........

स्व से विराट की यात्रा भक्ति या ज्ञान से ही होती है। भक्ति और ज्ञान को अलग-अलग नहीं किया जा सकता है। भक्ति में भक्त प्रारम्भ में अपने इस शरीर से भगवान की आराधना अपने इष्ट की पूजा अर्चना करता है। अपने निज शरीर को धीरे-धीरे पूर्णतः प्रभु को समर्पित कर देने पर स्व के अस्तित्व बोध का विलोप हो जाता है और स्वयं परमात्म शक्ति से एकाकार हो जाता है। यही उसकी स्व से विराट के मिलन की यात्रा का अंतिम पड़ाव माना जा सकता है।

वहीं ज्ञान में बाहर इष्ट रूप में परमात्मा की साकार मूर्ति का भाव न रखकर अपने आत्म चेतन से साक्षात्कार के लिए, इस पंचभूतीय शरीर को नश्वर जानकर परम चैतन्य की शक्ति जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, वही आत्म चेतन के रूप में हमारे अन्दर एवं सभी में विद्यमान है, जान लेते हैं। यहाँ भी आत्म चेतन स्व का विराट चैतन्य से एकाकार अनुभव होता है, यह यात्रा विराट से सम्मिलन ही है।

भक्त अपने अहंकार को इष्ट में समर्पित करता है और ज्ञानी शरीर की नश्वरता के बोध से अहंकार को अपने पास किंचित् भी नहीं आने देता है।

विराट के समीप जैसे-जैसे हम होते जाते हैं, वैसे-वैसे ही साधुत्व या संतत्व का मन-बुद्धि में समावेश होने लगता है। जिससे सहनशीलता के साथ-साथ ही सभी चेतन प्राणियों के प्रति मनुष्य ही नहीं अपितु संसार के प्रत्येक जीव-जन्तु ही नहीं वरन् प्रकृति पेड़-पौधे वनस्पतियों के प्रति भी वह ब्रह्मत्व का भाव रखकर, करुणामयी हो जाता है।

संतत्व के विशेष गुण राग-द्वेष, लिप्सा से मुक्त होना है। ऐसा शरीर सबके प्रति करुणा, प्रेम से भरा होता है और उसका इस जगत में कोई भी शत्रु नहीं होता है। यही सही अर्थों में संतत्व है। सबमें मैं और मुझमें ही सबका भाव ही तो ब्रह्मत्व की सानिध्यता को दिलाता है।

श्री श्री 1008 स्वामी विंश्वम्भरानन्द जी ऐसे ही ब्रह्मज्ञ सद्गुरु संत थे। जिनकी कृपा दृष्टि बिना किसी भेदभाव के सभी पर सदा बरसती रही/बरसती है एवं सदैव बरसती रहेगी। वह तो शरीर से परे चैतन्य शक्ति पूर्ण सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ ब्रह्मस्वरूप हैं।

जिनकी कृपा पुंज सुधि पाठकों को सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती रहे, इसी भाव से श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता का प्रकाशन झाँसी आश्रम द्वारा गुरु महाराज की शक्ति से किया जाता है। माँ सरस्वती की कृपा से लेखन के रूप में प्रकाशित भावों पर चिंतन कर, मानव जीवन के उद्देश्य को सफल बनायें।

**– प्रमोद कुमार गुप्ता**
संपादक

# परम पूज्यनीय श्री स्वामी शुकदेवानन्द का योग शिविर में प्रवचन – चतुर्थ पुष्प

ब्रह्म की प्राप्ति, अप्राप्त की प्राप्ति नहीं हैं अपितु जैसे किसी के कण्ठ में हार पड़ा है और उसे हार के न होने का भ्रम हो जाता है तो हार को प्राप्त नहीं करना, हार तो कण्ठ में ही है लेकिन हार के गायब होने का भ्रम निवारण ही कर्तव्य है। इसी प्रकार जो आत्म रूप से मैं के रूप में जानने में आने वाला निरुपाधिक चैतन्य ब्रह्म है, जिसका स्वरूप सत्, चित् और आनन्द है वही सच्चिदानन्द, सर्वव्यापी चेतन है जो समस्त प्राणियों की आत्मा है। उसी आत्म चेतन को हम केवल मैं के रूप में ही अनुभव कर सकते हैं। हम देखते हैं कि यह संसार परिवर्तनशील है, इस सृष्टि में कोई भी वसतु स्थिर नहीं हैं प्रत्येक वस्तु में छः विकार पैदा होना, बढ़ना, स्थिर मालूम पड़ना परिवर्तन होना, छरण होना, नष्ट होना लगे हुए हैं। हम बाल्यावस्था में बढ़ते नजर आते हैं। बाल्यावस्था परिवर्तित होकर कुमार अवस्था,कु मार से युवा, युवा से वृद्धावस्था आ जाती है। अवस्थाएँ बदलती रहती हैं लेकिन जो इन अवस्थाओं का दृष्टा है, वह अपने साक्षी स्वरूप में सदैव बना रहता है। यही आत्म-चैतन्य हमारी बुद्धि एवं मन आदि का प्रकाशक है। यही जाग्रत अवस्था में इन्द्रियों के माध्यम से अपना समस्त व्यवहार कर रहा है। संसार का व्यवहार ज्ञानेन्द्रियों एंव कर्मेन्द्रियों से मिलकर होता है, पहले ज्ञान होता है फिर ज्ञान के अनुसार क्रिया होती है। जैसे नेत्रों से हम देखते हैं तथा पैरों से चलते हैं। इस तरह से जाग्रत अवस्था ही हमारी व्यवहारिक अवस्था है। जिसमें प्रारब्ध एवं वासना के अनुसार हमारे कर्म होते रहते हैं तथा जो कर्म वासना के अनुसार हो रहे हैं उनमें स्वभाविक रूप से कर्ता भाव आ जाता है। यह कर्ता भाव ही हमें भोक्ता बना देता है।

मनुष्य योनि की यह विशेषता है कि इसमें बुद्धि के विकसित होने की अधिकतम सामर्थ्य है। अतः हम जो भी संकल्प पूर्वक काम करते हैं, उनके कर्ता बन जाते हैं और कर्ता होने के कारण भोक्ता भी होते हैं। यही क्रम हमारे जन्म-मरण का कारण होकर मनुष्य, पशु-पक्षी से लेकर कीट-पतंग आदि योनियाँ भी भोगनी पड़ती हैं। सतोगुण में किये हुए शुभ कर्म से हम देव योनियों में भी पहुंच जाते हैं तथा निष्काम भाव से किये हुए कर्मों द्वारा अन्तःकरण शुद्ध होने पर एवं महापुरुषों के संसर्ग से निर्वासनिक होने पर अपने स्वरूप का बोध 'अहं ब्रह्मास्मि' (वह ब्रह्म मैं ही हूँ) हो जाता है, फिर जब गुरुदेव 'तत्त्वमसि' का उपदेश करते हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु देश परिच्छिन्न, काल परिच्छिन्न तथा वस्तु परिच्छिन्न है। देश परिच्छिन्न का अर्थ है कि कोई भी वस्तु एक सी हर स्थान में मौजूद नहीं है तथा प्रत्येक वस्तु का पैदा होने के पहले अभाव था और नष्ट हो जाने के बाद भी अभाव हो जाता है। कवेल बीच में ही उसकी प्रतीति हो रही है। अतः यह सिद्ध होता है कि वह सत् नहीं है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु अलग-अलग

होने से ही प्रतीत हो रही है , अतः वह भी सत् नहीं हो सकती। सत् तो वह है जो देश, काल, वस्तु से अपरिच्छिन्न (सदा एक सा अज, अविनाशी) अजन्मा और सर्वव्यापी है। ऐसा बोध होने पर कि केवल एक ही सत् वस्तु नाना रूपों में सर्वत्र प्रतीत हो रही है।

हम देखते हैं कि व्यवहार वस्त्र से हो रहा है लेकिन वस्त्र में सूत के अलावा कुछ भी नहीं है, सूत अगर निकाल लें तो वह वस्त्र केवल प्रतीति मात्र है। सूत की प्रतीति कपास में हो रही है, कपास पंचभूत ही है। पंचभूत सूक्ष्म रूप से पंचतत्व ही है। पंचतत्वों की प्रतीति प्रकृति में हो रही है।

उस परमतत्त्व का ज्ञान होने पर प्रकृति गायब हो जाती है, प्रकृति के गायब होने को ही वेदान्त में इस प्रकृति को स + अन्त = सान्त कहा है। यद्यपि पांताञ्जल योग दर्शन में प्रकृति एवं पुरुष दोनों को सत्य माना है लेकिन वेदान्त में प्रकृति अनादि तो है पर सान्त अनादि है। सत् केवल आत्मा ही है, आत्मा का नाम ही ब्रह्म है। आत्मा ही सबको सिद्ध करने वाला है। 'मैं' से ही सबकी सिद्धि होती है। 'मैं' है और संसार नहीं रहे तब भी ज्ञान स्वरूप 'मैं' रहता है। 'मैं' यानि आत्मा को ब्रह्म रूप में जान लेना ही ज्ञान है। मनुष्य जीवन का लक्ष्य शान्ति है। अर्थात्- अपने स्वरूप को पहचान कर उस परम तत्त्व से एक हो जाना, चाहे वह भक्ति के द्वारा हो अथवा ज्ञान के द्वारा हो। भक्ति में इष्ट को ब्रह्म स्वरूप जानकर 'मैं' को इष्ट से एक करना है, ज्ञान में 'मैं' को तत्त्व रूप में पहचान कर तत्त्व से एक होना है।

संकलनकर्ता– **प्रमोद कुमार गुप्ता**
योग प्रशिक्षक, झाँसी

## भोजन से सम्बन्धित सावधानी

- प्रतिदिन निर्धारित समय पर ही भोजन करें। खाना हल्का और जल्दी पचने वाला हो। भोजन धीरे-धीरे एवं चबाकर खायें।
- अगर भूख नहीं है तो खाना न खाएं।
- शारीरिक गतिविधियाँ बढ़ायें। जैसे- आसपास कम दूरी के कार्य करने के लिए पैदल जायें, सीढ़ियों का इस्तेमाल करें, योग व प्राणायाम को अपने जीपन का अभिन्न हिस्सा बनायें।
- धूम्रपान एक मीठा जहर है। तिल-तिल करके हमको मृत्यु की ओर ढकेलता है। अतः इससे अनिवार्य रूप से बचें।
- हरी सब्जियाँ, फल, शलजम, बीन्स, मटर, सनफ्लॉवर, सीड्स, अलसी आदि खाएँ। इनमें फॉलिक एसिड होता है जो कोलेस्ट्रोल लेवल को नियंत्रण करने में मदद करता है।

# नानुशोचन्ति पण्डिताः

कुरुक्षेत्र की रणभूमि में जब अर्जुन अपनी स्थिति का वर्णन कर प्रभु के चरणों में शिष्य भाव से समर्पित हो जाता है तब प्रभु की अमृतमयी वाणी करुणावशात प्रकट होती है। जो वर्तमान में भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी तत्काल में थी। जब हम युद्ध न करने के सन्दर्भ में अर्जुन के तर्क सुनते हैं तो हमें भी वे ठीक प्रतीत होते हैं। किन्तु जब भगवान उसके वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि अर्जुन तुम बातें तो बुद्धिमान, विद्वान, पण्डित की तरह करते हो, किन्तु बुद्धिमान की शास्त्रीय परिभाषा तो तुम्हारी स्थिति से भिन्न है। **"नानुशोचन्ति पण्डिताः।" अर्थात्–** पण्डिताः न अनुशोचन्ति, पण्डित लोग शोक नहीं करते। जो शोक करते हैं वो पण्डित नहीं हैं। तुम तो शोक न करने योग्य जनों के लिए शोक कर रहे हो और बातें समझदारों की तरह करते हो।

भगवान की यह वाणी सुनकर मानों अर्जुन ने आंखों ही आंखों में प्रश्न किया होगा कि शायद उनके जीवन में शोक पूर्ण परिस्थिति आई ही नहीं होगी। तब अर्जुन की इस मनोदशा पर भगवान फिर कहते हैं कि– **"गतासून अगतासूश्च" अर्थात्–** गत असून, असून माने प्राण, जिसके प्राण चले गए हैं और अगत असून, जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके विषय में पण्डित शोक नहीं करते हैं। साधारणतः दुनिया में जो जीवित हैं या जो मृत हैं। उन्हीं के बारे में शोक होता है। इस विचार से एक स्वाभाविक प्रश्न आएगा कि ज्ञानी तो पत्थरदिल, निष्ठुर, महास्वार्थी हुआ। उसे दुनिया में किसी के सम्बन्ध में शोक ही नहीं होता। इस सन्दर्भ में ध्यातव्य यह है कि यहाँ जीवित और मृत की व्याख्या सम्बन्धियों के संदर्भ में करनी चाहिए। सम्बन्धियों की दो ही दशा होती हैं जो या तो सम्बन्ध बना है, जीवित है या टूट गया है, मृत है। ज्ञानी सम्बन्ध मात्र से प्रभावित नहीं होता है। सम्बन्ध उसके लिए निष्प्रभावी होते हैं। चाहे वह सजीव सम्बन्ध हो या निर्जीव वस्तुओं से हो, उसकी प्रभा को उसकी स्थिति से उसे विचलित नहीं कर सकते हैं। पद, प्रतिष्ठा, सम्पत्ति, परिवारजन आज अगत असून हैं, हमारे साथ हैं। लेकिन ये भी सच्चाई है कि ये गत असून भी होंगे। हमारे शोक का हेतु 'अहमसत्ता (मैं) नहीं होता है। जब भी शोक होता है वह सम्बन्ध को लेकर ही होता है। जीवन में जितने भी द्वन्द हैं, उन्हें ही शोक कहते हैं। द्वन्द में दोनों बातें होती हैं। सुख होता है तो दुःख भी होता हैं स्वास्थ्य होता है तो रोग भी। आत्मा स्वयं में हर्ष या विषाद का कारण नहीं बनता। सम्बन्ध ही है जो सुख-दुःख आदि द्वन्द का कारण बनतार है और उससे शोक होता है। जो पण्डित हैं वो सम्बन्ध पर आश्रित नहीं होता है। सम्बन्धों पर आश्रित होना, उनसे प्रभावित होना अज्ञानी का लक्षण है। गीता का पण्डित तो सम्बन्ध निरपेक्ष है। देह रहे या जाये, मिथिला जले या रहे, तक्षक डसे या न डसे, ज्ञानी शोक नहीं करता। किसी गुण के आने से विचलित नहीं होता।

**प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।**
**न द्वोष्टि सम्प्रवृतानि, न निक्तानि काउक्षति।।** (14-22)

चित्त में सत्व गुण बना रहे, तमो गुण चला जावे, रजो गुण आवे तब भी वह इनकी

निवृत्ति हेतु प्रयास करता है और न इनका बनाये रखने हेतु। इसको त्रिगुणातीत बोलते हैं। अपने चित्त से ही उसका सम्बन्ध नहीं रहा तो बाकी के सम्बन्धों की क्या सामर्थ्य है कि ऐसे ज्ञानी को शोक दे सके। वह स्वरूप में प्रतिष्ठित है। पण्डित की इस परिभाषा से कोई निष्ठुर स्वार्थी होना तात्पर्य न ग्रहण कर लेवे। इसलिए गीता में ही ज्ञानी को **"सर्वभूतहिते रताः"** भी कहा। रामचरित मानस में कहा (उत्तरकाण्ड 124-8)-

**संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।।**
**निज परताप अवहिं नवनीता। पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता।।**

वह सम्बन्धों से प्रभावित नहीं होता, दूसरी तरफ से भी सत्य है कि वह कोमल हृदय है। ऐसी स्थिति कब आती है, इसके लिए उपनिषद में कहा-

**तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वम् अनुपश्यतः।** (ईशावास्योपनिषद 7)

अद्वैत तत्व के अनुभव से ही शोक मोह रहित स्थिति आती है। स्वरूपावस्थान ही वह परम पद है। वही पण्डित है।

पावन गुरु चरणों में समर्पित।

**- ब्र. राघवेन्द्र चैतन्य**
चिन्मय मिशन झाँसी
मो.- 8707209996

---

# गुरु कृपा

**गुरु न अपनाते, किस राह में हम जाते। रम कर इस जग में, यूं ही मर जाते।।**
**उलझ उलझ अपने अज्ञान विचारों में। अनमोल जीवन को, यूं ही लुटा जाते।।1।।**
**काम, क्रोध लोभ हमको उलझाते, माया के इस फेर में, यूं ही भटक जाते।।2।।**
**तेरा मेरा, मेरा तेरा, दिन रात किये जाते। पाकर जन्म अनमोल व्यर्थ गंवा जाते।।3।।**
**गुरु ने दिखलाया, सही राह पर चलवाया। सरल सुबोध वाणी से, परम ज्ञान कराया।।4।।**
**गुरु चरण शरण में आकर, संशय सारे मिटाकर। फिर ध्यान में बिठाकर, जीव भाव मिटाकर ।।5।।**
**मिला दिया परम से, सारे भेद हटाकर। शोक मोह अब छूट, बन्धन सारे टूटे।।6।।**
**अब मैं हूँ बस मैं हूँ, बस मैं हूँ, बस मैं हूँ। बस मैं ही मैं हूँ, बस मैं ही मैं हूँ।।7।।**
**बस मैं ही मैं हूँ।**

**- ब्र. राघवेन्द्र चैतन्य**
चिन्मय मिशन झाँसी
मो.- 8707209996

# जीवन यात्रा

**उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है।**
**जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है।।**

हम सब मुसाफिर हैं, जीवन के सफर में जीवन यात्री हैं, सोये हुए हैं। यह ऐसा ही है जैसे किसी यात्री को जिस स्टेशन पर उतरना था, वह आ गया लेकिन वह सोया हुआ है। हमारी स्थिति तो ऐसी है कि हम लगातार यात्रा तो कर रहे हैं, लेकिन हमें पता ही नहीं है कि हमें जाना कहाँ है। हमारा पथ क्या है, हमारा साधन क्या है, हमारा गन्तव्य क्या है?

हमारा चलना ऐसे ही है जैसे– **'अन्धनैव नीयमाना यथान्धाः।'**

एक किले में एक अन्धा व्यक्ति बन्द था और उस किले से निकलने का केवल एक ही दरवाजा था। वह व्यक्ति जब भी दरवाजे के पास पहुँचे तो उसके सर में खुजली शुरू हो जाये। वैसे ही परमात्मा अपनी ओर आने का कोई मार्ग हमारे लिए बनाते हैं, हमें संसार के विषयों की खुजली होना शुरू हो जाती है। हमें अपनी यात्रा का लक्ष्य– हमें जाना कहाँ है, पता होना चाहिए। यात्रा में तनिक भी प्रमाद न हो।

यात्रा के क्रम से पहले जागना पड़ता है, उठना पड़ता है, फिर चलना पड़ता है– **'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।'**

जीवन यात्रा का एक क्रम है। यात्री क्रम-क्रम से उत्साह के साथ आगे बढ़ें– चरैवेति, चरैवेति। निरन्तर आगे बढ़ो।

प्रकृति में जिसका जन्म हुआ है, वह कभी स्थिर नहीं रह सकता। वह यात्रा करेगा व अन्त में अपने उद्गम अपने मूल में मिलकर ही स्थिर होगा। जैसे घट को विश्राम मिट्टी में मिलकर ही है।

हमारा मूल उपादान सत्, चित्, आनन्द है। जीवन यात्रा में निरन्तर अपने स्वरूप का ध्यान बना रहे। हम सत् हैं, हम चित् हैं, हम आनन्द हैं।

**1) सत् – हम हैं।**

**2) चित् – हम जानते हैं।**

**3) आनन्द – हम सुख स्वरूप हैं।**

यह तीनों बातें हमारी यात्रा में होवें। उपादान कहते हैं– जिससे जीवन बनता है। जिसको लेकर कार्य जीवित रहता है और अपना कार्य करता है।

हमारी जीवन यात्रा का पहला उपादान है– 'सत्' – हम हैं। हम न तो मौत से डरें और

न दूसरों को मौत से डरायें। हम किसी को त्रास न दें, किसी को हानि न पहुँचायें। सबके विकास में हमारा सहयोग हो। जीवन केवल अपने लिए नहीं होता, अपने साथ सबको लेकर आगे बढ़ने के लिए होता है। अपने स्वरूप का ध्यान बना रहे कि मैं अजर हूँ, अमर हूँ। ऐसा ध्यान करते हुए उत्तम निर्माण का, कार्य का संकल्प जीवन में लें।

हमारी जीवन यात्रा का दूसरा मूल उपादान है– 'चेतनता'। किसी भी बच्चे के जन्म के समय डाक्टर उस बच्चे को रुलाकर उसकी चेतनता जांचता है। पशु–पक्षी भी अपना हित–अनहित जानते हैं। मनुष्य का स्वरूप ही ज्ञान है। बिना ज्ञान के मनुष्य पशु के समान है। इसलिए हम स्वयं ज्ञान सम्पन्न बनें एवं दूसरों को ज्ञान सम्पन्न बनावें। हमारा जीवन वृक्ष की भांति देने वाला हो। वृक्ष अपने अंकुर से, अपने तने से, अपनी डाली से, अपने पत्ते से, अपने फूल से, अपनी हवा से, अपनी छाया से, यहाँ तक कि अपनी छाल से, अपने कोयले से लोगों का कल्याण करता है।

जीवन केवल धन कमाने के लिए नहीं है और न ही केवल भोग भोगने के लिए है। यह जीवन है– अर्थ, काम और धर्म के साथ–साथ मोक्ष पाने के लिए। जीवन यात्रा का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति होना चाहिए।

हमारी जीवन यात्रा का तीसरा उपादान है– 'आनन्द'। हमारा स्वरूप है आनन्द, हमारा स्वरूप है सुख। हम हमेशा आनन्द में रहना चाहते हैं, कभी दुःखी नहीं रहना चाहते। सुखी रहने की प्रवृत्ति केवल मनुष्य की नहीं है, प्राणिमात्र की है। सब चाहते हैं– मुझे सुख की प्राप्ति हो, मुझे दुःख न हो। जीवन यात्रा में हम उत्साह के साथ, सुखपूर्वक चलें। दूसरे को दुःख न दें।

स्वरूप के तीनों ध्यान के साथ, जीवन यात्रा में चौथी बात है– हम सबके साथ मिलते हुए चलें। व्यर्थ तर्क में न पड़ो। निरन्तर सावधानी बनी रहे कि– जीवन व्यर्थ न बीत जाए। यह मनुष्य जीवन आगे बढ़ने के लिए मिला है, एक जगह स्थिर रहने के लिए नहीं। जैसे पानी जब तक बहता रहता है, स्वच्छ रहता है। एक जगह रुका हुआ पानी, सड़ जाता है। यह जीवन आगे बढ़ने के लिए है। आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, बढ़ते ही चलो। चरैवेति–चरैवेति।

**– ब्रह्मचारिणी गार्गी चैतन्य**
चिन्मय मिशन, सतना

## दोहा

**कर्म सदा इस भांति कर, करे सदा उपकार।**
**छोड़ जगत को जायें जब, याद करे संसार**

**– प्रमोद कुमार गुप्ता**

# विज्ञान या अध्यात्म–जीवन की उत्पत्ति का रहस्य

गुरुदेव श्री **विशम्भरानन्द** कहा करते थे कि जीवन में आध्यात्मिक चक्र होना अनिवार्य है। बिना आध्यात्मिकता के सुख शान्ति का स्थान नहीं है। इसी के साथ वह यह भी कहा करते थे कि अपने जीवन में विज्ञान को लायें क्योंकि यह विज्ञान का युग है परन्तु जन्मजात आध्यात्मिकता को प्रस्तुत न होने दें। जीवन और जगत (संसार) को लेकर विभिन्न प्रकार की अवधारणायें आज हमारे समक्ष हैं। इनमें कुछ मिथ्याएँ हैं तो कुछ वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर अवधारित हैं। जीवन और जगत के रहस्य को जानने के लिए क्या वैज्ञानिक दृष्टिकोण सही है अथवा आध्यात्मिक। जहाँ अध्यात्म जीवन को चेतना और परमात्मा के दृष्टि के सापेक्ष में देखता है, वहीं विज्ञान के अनुसार जीवन कुछ केमिकल्स रिएक्शन के चलने से घटित हुआ है। इसी प्रकार इस जगत की उत्पत्ति विज्ञान बिगबैग के द्वारा आज से लगभग 13.6 अरब वर्ष पूर्व मानता है। अध्यात्म इसका सृजन परमात्मा द्वारा परम चेतना से रचित मानता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखते हैं कि आखिर इस जगत में जीवन की शुरुआत कैसे हुई। ऐसे कौन से घटक थे जिन्होंने जीवन को जन्म दिया? जीवन आया कहाँ से इत्यादि। बिगबैग थ्योरी के अनुसार इस सृष्टि का जन्म आज से 13.6 अरब वर्ष पूर्व एक बिगबैंग से हुआ था। उसके उपरान्त समय और ऊर्जा तत्व का जन्म हुआ और उन्हीं के द्वारा इस सृष्टि (यूनिवर्स) की संरचना हुई तथा खगोलिए पिण्ड इत्यादि की संरचना हुई। आज से लगभग 4 अरब साल पहले तक पृथ्वी की कक्षा के वातावरण में ऑक्सीजन नहीं थी। वातावरण में ऑक्सीजन बनाने का काम सबसे पहले हरे पौधों ने शुरू किया। ये प्रकाश संश्लेषण (फोटो सिंथेसिस) के दौरान वातावरण से कार्बन डाई आक्साइड लेकर ऑक्सीजन छोड़ने लगे। इससे पृथ्वी पर ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ने लगी और जीवन के नए आयाम विकसित होने लगे। पृथ्वी पर सबसे पहले विकसित होने वाला हरा पौधा साइनोबैक्टीरिया था। यह पहला जीव था जो ऑक्सीजन में सांस नहीं ले सकता अपितु अनाक्सी श्वसन से काम चलाता था। चार्ल्स डार्विन 19वीं शताब्दी के एक बहुत बड़े वैज्ञानिक थे। उन्होंने 1871 में अपने रिसर्च पेपर के द्वारा अवधारणा रखी कि जीवन की शुरुआत संभवत: गुनगुने पानी से भरे एक ऐसे उथले तालाब में हुई होगी, जिसमें सब प्रकार के अमोनिया और फास्फोरिक लवण उपस्थित रहे होंगे। इन पर सूर्य प्रकाश, ऊष्मा, और आकाशीय विद्युत की क्रियाएँ होती रही होंगी। इसके चलते एक ऐसे परिवेश की निर्मिति हुई जिसमें जीवन घटित हो गया।

19वीं शताब्दी में ही जर्मनी में जन्मे एक प्रसिद्ध भौतिकवादी दार्शनिक ज्योर्ज हेगल के अनुसार जीवन पदार्थ से जन्मा है और पदार्थ का लक्ष्य परम चेतना को प्राप्त करना है। परम चेतना अर्थात् ईश्वर ने इस ब्रह्माण्ड की रचना की, उसमें पृथ्वी को जन्म दिया और पृथ्वी पर जीवन दिया। हीगल की थ्योरी के अनुसार जीवन की उत्पत्ति से ही परमचेतन के ऐसे विराट प्रयोजन का एक हिस्सा है जिसके अन्तर्गत जीवन की जो शुरुआत पृथ्वी पर घटित हुई। उसके द्वारा पदार्थों को चैतन्य की भी उन्नति होने लगी। आज चेतना उन्नति करते हुए मनुष्य के स्तर पर पहुँच गई है। मनुष्य बाकी जीव जन्तुओं से अधिक चैतन्य है। हीगल के अनुसार यह कड़ी और आगे तक चलती जायेगी। जब तक पदार्थ (मनुष्य) अपनी चेतना को इतना परिमार्जित नहीं कर लेता कि वह परम चेतना के शिखर को छू ले।

जीवन और जगत को लेकर अब हम अध्यात्म के दर्शन का विश्लेषण करेंगे। जगत की उत्पत्ति को लेकर सबसे प्राचीन प्रसंग ऋग वेद में (जो आज से 3500 वर्ष पूर्व रचित हुए थे) मिलता है। ऋग वेद के 10वें मण्डल के 121वें सूत्र में हिरण्यगर्भ को उस मूल तेजस्य तत्व बतलाया है जिसके द्वारा सृष्टि की संरचना हुई। यह तथ्य बिगबैंग थ्योरी के सामंजस्य में है और ऐसा प्रतीत होता है कि बिगबैंग थ्योरी के प्रणेता रोम के महान वैज्ञानिक जार्ज लेमेत्रे ने भारतीय वेदों का अध्ययन अवश्य किया होगा।

**हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजात: पतिरेक आसीत्।**
**स दाधार पृथ्वीं द्यायुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्।।** (ऋग 10, 121)

**अर्थ–** सृष्टि के आदि में केवल हिरण्यगर्भ ही था। जो सभी प्राणियों का प्रकट अधीश्वर था।

जो पृथ्वी और अन्तरिक्ष को धारण करता था। आओ उस देवता की हम उपासना करें। जब सृष्टि की उत्पत्ति नहीं हुई थी। उस समय केवल हिरण्यगर्भ ही था। पूर्ण शुद्ध ज्ञान की शांतावस्था ही हिरण्य (सोने की तरह प्रकाशित अड़ा) है। इस हिरण्य के अन्दर अभिमान करने वाला चैतन्य ज्ञान ही उसका गर्भ है। अतः इस जगत का सृष्टा यह हिरण्यगर्भ है। इस हिरण्यगर्भ से ही सृष्टि, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, समय, प्रकाश (ऊर्जा) और पदार्थ तथा जीवन (मनुष्य और जानवर) की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार ऋगवेद के 10वें मण्डल के 129वें सूत्र जिसे नासदीय सूत्र कहा जाता है जिसमें कुल 7 मंत्र हैं वह भी सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व केवल एकमात्र ईश्वर की उपस्थिति की अभिवेचना करता है।

**नासदासीन्नो सदासीन्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।**
**किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः कि मासीदल्हनं गभीरम्।।** (ऋग. 10, 129)

**अर्थ–** प्रलयकाल में पंचभूतादि सृष्टि का अस्तित्व नहीं था और न ही अभावग्रस्त असत सृष्टि का अस्तित्व था। न उस समय भूलोक, आकाश तथा आकाशादि से परे अन्य लोग थे। सबको आच्छादित करने वाले (ब्रह्माण्ड) भी नहीं थे। किसका स्थान कहाँ था? अगाध और गम्भीर जल का भी अस्तित्व उस समय कहाँ था। अर्थात् उस समय केवल अभाव था।

इसी मंत्र के चौथी ऋचा में सृष्टि की संरचना का कारण बताया गया है।

**कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेत, प्रथमं यदासीत्।**
**सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीवा।।** (ऋग. 10,129,4)

अर्थ– सर्वप्रथम परब्रह्म परमात्मा के मन में विराट सृष्टि को उत्पन्न करने की इच्छा शक्ति प्रकट हुई। तत्पश्चात् उस मन से सबसे पहले उत्पत्ति का कारण (बीज सृजन सामर्थ्य अर्थात हिरण्यगर्भ) उत्पन्न हुआ। मेधावी ज्ञानीजनों ने विवेक, बुद्धि द्वारा हृदय में विचार करके व्यक्त न होने वाले असत् से व्यक्त होने वाले सत् तत्व के उत्पत्ति स्थान निरुपित किये।

परन्तु इसी मंत्र की अन्तिम ऋचा (सातवीं ऋचा) भेद उत्पन्न कर देती है–

**इयं विसृष्टियर्त आबभूव यदि वा दधे यदि वान न।**
**वो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।।** (ऋग 10,129,7)

**अर्थ–** इस सृष्टि का उत्पादन कहाँ से हुआ, किसने रचना की और किसने नहीं की। ये सभी वही एक मात्र परमेश्वर ही जानते हैं? जो इस परमधाम में रहते हुए इस सृष्टि के अध्यक्ष हैं। सम्भव है वे भी इस सम्बन्ध में पूर्णतया न जानते हों।

उपरोक्त ऋग वेद की ऋचाओं से और वैज्ञानिकों के बिगबैंग थ्योरी से यह तो अभिप्राय सिद्ध होता है कि सृष्टि की संरचना अचानक शून्य से हुई है। अभी हाल की वैज्ञानिक खोजों से भी यह ज्ञात होता है कि पदार्थ ब्रह्माण्ड इत्यादि ब्लैक होल के द्वारा नष्ट किये जा रहे हैं। ब्लैक होल एक ऐसा पिण्ड है जिसके गुरुत्वाकर्षण से बचने के लिए किसी भी पदार्थ का पलायन वेग (एस्केप विलोसिटी) प्रकाश की गति से अकि हो। वैज्ञानिकों हबल टेलिस्कोप के द्वारा ऐसे पिण्डों की खोज की है जो अपने आस–पास के सभी खगोलिए पिण्डें, तारों इत्यादि को अपनी गुरुत्वाकर्षण वाली शक्ति से अपने में समा लेते हैं। क्योंकि इन पिण्डों की गुरुत्वाकर्षण शक्ति इतनी अधिक है कि प्रकाश भी इससे बचकर नहीं जा पाता और इसी कारण से इनको ब्लैक होल कहा गया है। ऐसी अवधारणा है कि जिस प्रकार ब्लैक होल ब्रह्माण्डों का विनाश करने वाला है। उसी प्रकार हिरण्यगर्भ सृष्टियों की संरचना करने वाला है। तदपि जैसा ऋग वेद के 10वें मण्डल के मंत्रों (हिरण्यगर्भ सूत्र मंत्र 121 और नासदीय सूत्र मंत्र 129) में वर्णित है कि परमात्मा इन सबसे ऊपर वह सत् ही जो सब कर्ता होते हुए भी अकर्ता है।

**सर्वाधारं सर्ववस्तु प्रकाशं, सर्वाकारं सर्वगं सर्वशून्यम्।**
**नित्यं शुद्धं निश्चलं निर्विकल्पं, ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि।।**

ईश्वर वह है जो सबका आधार, सब वस्तुओं का प्रकाशक, सर्वरूप, सर्वव्यापी, सबसे रहित, नित्य, शुद्ध, निश्छल और विकल्प रहित अद्वैत ब्रह्म है। शिवोऽहम्।

**–राजेन्द्र कुमार मिश्रा**

# सत्गुरु देव भगवान की पुण्य स्मृति

आप और हम सब महापुरुषों एवं गुरुजनों की न तो जन्म दिवस और न ही मरण दिवस ही मनाते हैं। इसलिए श्रीमद् भागवद् गीता में अध्याय क्रम 2 श.क्र. 20 में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि- **"न जायते मियते कदाश्चित्।"**

उनका संकेत शरीर के लिए नहीं अपितु आत्मा के लिए है। इसलिए संतों को गुरुओं को महात्मा की संज्ञा दी गई है। अस्तु, उनका जन्म, मरण दिवस न मनाते हुए उनकी पुण्य स्मृति मनाई जाती है। पुण्य स्मृति मायने उनके सत्कर्म को याद करके अथवा चलकर के अपने जीवन को सार्थ बनाना ही पुण्य स्मृति दिवस मनाना है। जिस प्रकार नित्य मंदिर न जाने वाले के लिए हनुमान जी के सप्ताह में दो दिन मंगलवार, शनिवार निश्चित कर दिये जाते हैं जिससे कम से कम सप्ताह में दो दिन तो जाता रहे। बल्कि मंदिर तो सातो दिन जाना चाहिए। इसी प्रकार भागवत स्मरण गुरु स्मरण अनवरत् रूप से होना चाहिए। परंतु ऐसा न होने पर वर्ष में कम से कम गुरुदेव भगवान की पुण्य स्मृति करते रहें। अतः हमें गुरुदेव भगवान के जीवन में यह शिक्षा लेनी चाहिए कि उनका जीवन त्याग, तपस्या, ब्रह्म निष्ठता एवं वैराग्य से परिपूर्ण रहा। पुण्य कर्मों की ओर इशारा करते हुए श्री तुलसीदास महाराज ने श्रीराम चरित मानस में लिखा है-

चौ.- **जनक सुकृति मूरति वैदेही। दशरथ सुकृति राम धार देही।।**

गुरुदेव भगवान की महिमा का बखान करते हुए महापुरुषों ने कहा है-

**जगत मध्य देखा है, विचार कर सब वस्तुओं को,**
**किन्तु कोई भी वस्तु गुरु सम गुरु नहीं पाती है।**
**माता, पिता, पुत्र, कलत्रहु देखे सभी**
**इनकी सेवा भी कुछ, स्वार्थ भाव लाती है,**
**एक ही शक्ति है, गुरु भक्ति माह**
**अपने से विशेष, सदा शिष्य को बनाती है**
**छुअत कुधातु स्वर्ण हो जावे, पारस पारस नहीं कर पावे**
**गुरु कर आप समान**

ऐसे परम त्यागी, वीतरागी, ब्रह्मनिष्ठ, श्रोत्रिय सत्गुरु देव भगवान स्वामी विसम्भरानंद महाराज जी जो कि सर्व काल वंदनीय उनके श्री चरणों में भवंजलि, श्रद्धांजलि, पुष्पांजलि अर्पित करते हुए प्रार्थना करते हैं कि दासानुदास पर सदैव कृपा बनाये रखें।

कहा भी है कि विश्व में जिनको विशम्भर मिल गए, कोटि जन्मों के मुकद्दर खुल गए।

**– स्वामी भूमानंद**
श्री अखण्ड विषम्भरानंद संत आश्रम
सरनागत डबरा, ग्वालियर (म.प्र.)

# वैदिक वाङ्गमयः

वैदिक वाङ्गमय अत्यन्त प्राचीन है। मानवता की थाती है। विश्व के द्वारा स्वीकारा गया है कि ऋग्वेद विश्व की प्राचीनतम कृति है। आइए वैदिक साहित्य का सामान्य परिचय प्राप्त करें। वेद के अन्तिम भाग को वेदान्त कहते हैं। वेद के दो भाग हैं- मंत्र और ब्राह्मण। किसी देवता की स्तुति में बोले जाने वाले वाक्य को मंत्र कहते हैं तथा यज्ञानुष्ठानादि का वर्णन करने वाले भाग को ब्राह्मण कहते हैं। मंत्र समुदाय को संहिता कहा जाता है। ऋग, यजु, साम, अथर्व ये चार संहिताएं हैं। सभी वैदिक मंत्र इन चार संहिताओं में संकलित हैं। ब्राह्मण भाग में मुख्यतया वैदिक कर्मकाण्ड की विवेचना है। वेदों का अन्तिम भाग उपनिषद् कहलाता है। इसी को वेदान्त भी कहते हैं।

उपनिषदों में अध्यात्म विषयक गम्भीर विवेचना की गयी है। विषय की दृष्टि से वेद के 3 भाग है- कर्म, उपासना, ज्ञान जिनका परिचय संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक में प्राप्त होता है। प्राचीन काल में अध्ययन प्रायः संहिता से प्रारंभ होता था। गृहस्थाश्रम में यज्ञादि कर्म के लिए ब्राह्मण का प्रयोजन होता था। वानप्रस्थ और सन्यास में आरण्यक की आवश्यकता होती थी। इन्हें आवश्यक इसलिए कहा जाता था कि इनका ज्ञान प्रायः एकान्त निर्जन स्थान (अरण्य यानि वन) में होता था। उपनिषदों की गणना आरण्यक साहित्य में ही होती है। स्पष्ट है कि उपनिषद को ही वेदान्त कहा जाता है। उपनिषदों में ज्ञान काण्ड की प्रधानता है। उपनिषद अनेक हैं, किन्तु सबका विषय एक है। उपनिषदों में निहित ज्ञान के विवेचन में घटित विरोध के परिहार के लिए वादरायर्ण व्यास द्वारा ब्रह्म सत्र की रचना की गयी। इसमें उपनिषदों की एकवाक्यता स्थापित हैं। इसके कई नाम हैं- वेदान्त सूत्र, शारीरिक सूत्र, शारीरिक मीमांसा, उत्तर मीमांसा आदि। चारायण ने भिक्षुओं और सन्यासियों के लिए ही इन सूत्रों की रचना की। अतः ब्रह्मसूत्र को भिक्ष सूत्र भी कहते हैं। ब्रह्म सूत्र में चार अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" से प्रारम्भ कर चारों अध्यायों में उपनिषदों के अर्थ का विचार किया गया है। अतः वह वेदान्त कहा जाता है। ब्रह्म सूत्रों पर अपने साम्प्रदायिक अर्थ का प्रतिपादन अपने भाष्यों में विभिन्न आचार्यों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसलिए ब्रह्म सूत्र पर अनेक भाष्य लिखे गये हैं जिनका ब्योरा अगले अंक में दिया जाएगा। इत्यलम्।

**– पं. चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी**

अध्यक्ष-मानस समाज सत्संग समिति, सीपरी बाजार, झाँसी

## दोहा

शान्ति रहती हृदय में, तबहीं समता आए।
कह "प्रमोद" बिन नेह के, द्वेष कबहुं न जाए।।

**– प्रमोद कुमार गुप्ता**

# तुरीय अवस्था

नान्तः प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्।

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं

प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः॥

तुरीय यानि सत्-चित्-आनन्द आत्मा। वह न भीतर की ओर प्रज्ञावाला है, न बाहर की ओर प्रज्ञावाला, न उभयत:प्रज्ञ यानी दोनों ओर प्रज्ञावाला है, न प्रज्ञानघ्न है, न जानने वाला है और न ही नहीं जानने वाला है। अपितु वह अदृष्टम् जो देखा नहीं गया, अव्यवहार्यम् जो व्यवहार में नहीं लाया जा सकता, अव्यपदेश्यम् जो बतलाने में नहीं आ सकता, एकात्मप्रत्ययसारम् आत्मा ही है, प्रपञ्चोपशमम् जिसमें प्रपंच का सर्वथा अभाव है, उसी में प्रपंच कल्पित है अर्थात् प्रपंच उसका ही शरीर है। सर्वथा शान्त, शिवम् कल्याणमय एवं अद्वैत रूप वह परमात्मा जानने योग्य है। सबका बाघ होने पर तुरीय अवस्था में स्थिति है। इस स्थिति के अहर्निश बने रहने के लिए, सर्वत्र व्याप्त परमात्मा का अनुभव कर उसमें स्थित होना ही ब्रह्म साक्षात्कार है।

अन्तः प्रज्ञ नहीं का आशय है कि ऐसा नहीं कि वह केवल अन्तः प्रज्ञ ही है, न ही केवल बहिष्प्रज्ञ है यानी कि जाग्रत या स्वप्न मात्र में है, ऐसा भी नहीं है। उभयतः प्रज्ञ यानी दोनों के बीच में ही नहीं है और प्रज्ञानघ्न तात्पर्य केवल बुद्धि के अभाव में ही है, ऐसा भी नहीं है। प्रज्ञ नहीं है और अप्रज्ञ भी नहीं है अर्थात् उसकी सर्वज्ञता का कभी अभाव भी नहीं होता है। वह केवल एक अवस्था में ही नहीं है अपितु वह जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति, प्रज्ञ जानने की अवस्था या फिर अप्रज्ञ नहीं जानने की अवस्था यानी कि सभी अवस्थाओं में है एवं सबको जानने वाला भी वही है।

अदृश्य होने से अव्यवहार्य, कर्मेन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य नहीं है एवं अलक्षण लिङ्गरहित है। अचिन्त्य एवं अकथनीय भी है। कहना होगा कि आत्मा सर्वज्ञ, सर्वकालिक, सर्वदेशीय है ऐसा ज्ञान होते ही तुरीय स्थिति आ जाती है।

धर्म हो या अधर्म हो, हिंसा हो या अहिंसा हो या फिर कोई भी प्रपञ्च हो सभी स्थितियों में भी वह शान्त भाव से अविकार रूप में स्थित है। इस अवस्था को तुरीय या शिव स्वरूप भी कहते हैं। तुरीय ज्ञान अवस्था है जबकि सुषुप्ति अज्ञान अवस्था है। हाँ इतना अवश्य है कि साक्षी चेतन सभी स्थितियों को जानने वाला होता है। तभी तो हम जब प्रगाढ़ निद्रा यानी स्वप्न एवं जाग्रत अवस्था से भिन्न सुषुप्ति अवस्था में हमारी स्थिति होती है। आनन्ददायक निद्रा की अनुभूति कराने वाला साक्षी चेतन की स्फुरणा ही होती है जबकि तुरीय अवस्था निद्रा की नहीं अपितु ज्ञान की अवस्था है। ओंकार शिव स्वरूप परब्रह्म में स्थित होने पर जाग्रत में ही आनन्द की अनुभूति तुरीय अवस्था में स्थिति हैं।

ऐसा भी न सोचें कि तुरीय अवस्था आने पर शरीर के सारे व्यवहारिक कार्य समाप्त हो जाते हैं। शरीर रहते हुए समस्त व्यवहारिक कार्य अज्ञानी की तरह ही होते रहते हैं। लेकिन उनमें कर्तापन का अभाव होने पर गुण ही गुण में वर्त रहे हैं ऐसी धारणा हमारी बुद्धि में बन जाती है। इस धारणा के परिणाम स्वरूप हमें किसी भी जीवधारी के प्रति राग-द्वेष नहीं रहता बल्कि काम-क्रोध आदि विकारों से मन दूर हो जाता है। संसार में अपने कर्तव्य के प्रति जागरुकता अवश्य रहती है और संसार को मिथ्या जानकर अथवा सब अपना ही स्वरूप जानकर समाज के हित में कोई भी क्रांतिकारी कर्म चाहे वह देखने में हिंसात्मक ही क्यों न हो, करने में संकोच नहीं होता। उदाहरण के रूप में रामायण में राम के द्वारा राक्षसों का वध एवं द्वापर में कृष्ण के द्वारा अर्जुन को निमित्त बनाकर महाभारत में संहार कराना है। यह सब जाग्रत स्थिति वाले के लिए प्रेरक है।

तात्पर्य है कि सृष्टि के प्रति आत्मवत् बोध आने पर आत्म स्वरूप परमात्मा के साथ एक होकर आनन्द में स्थित होते ही निश्छल, शान्त, सहज, सरल, स्नेहिल व्यवहार के साथ निर्विकार, राग-द्वेष रहित चेतन की अनुभूति में स्थित परमानन्द की स्थिति तुरीय अवस्था में स्थित होने का द्योतक है। यह उपाधि मात्र ही है कहना होगा कि साक्षी भाव में समष्टि एवं व्यष्टि सबको जानने वाला चेतन तत्व के ज्ञान की अनुभूति होते ही परमानन्द में स्थित होकर निर्वासनिक अवस्था आ जाती है। तज्जनित पाप-पुण्य, सुख-दु:ख, जन्म-मरण के बंधन से अतीत होकर, हम जीते जी मुक्त हो जाते हैं।

**– प्रमोद कुमार गुप्ता**
झाँसी

## गुरु-शिष्य

विश्व विजेता सिकंदर एक बार अपने गुरु के साथ कहीं जा रहा था। रास्ते में एक बड़ी नदी पड़ी। उसके जल का प्रवाह काफी तेज था। सिकंदर बोला, "पानी की गहराई देखने के लिए मैं नदी में जाता हूँ।" गुरु ने कहा, "नदी में पहले मैं उतरूँगा।" जब काफी देर बहस हो गई तो सिकंदर ने अचानक नदी में छलांग लगा दी। गुरु भी उसकी रक्षा के लिए नदी में कूद गए। गुरु अपने शिष्य को संकट में नहीं देख सकता। जब किनारे पर पहुँच गए तब गुरु ने कहा, "तुम मेरे मना करने पर भी नदी में क्यों कूदे? अगर तुम डूब जाते तो......?" और इससे पहले गुरु कुछ और कहते, अवज्ञा के लिए क्षमा याचना करते हुए सिकंदर बोला, "अगर एक सिकंदर डूब जाता तो सौ सिकंदर बन सकते थे। लेकिन अगर आपको कुछ हो जाता तो हजारों सिकंदर मिलकर भी आप जैसा एक गुरु पैदा नहीं कर सकते थे।"

**यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।**
**शीश दिए जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।**

# तपस्या

जीवात्मा नित्य शुद्ध, नित्य मुक्त व नित्य प्रबुद्ध है। इसको कभी कोई विकार स्पर्श नहीं करता। विकार और परिवर्तन तो मनुष्य के चित्त में होते हैं। इसी के अनुरूप जीव को जीवन मिलता है। उसके जीवन की प्रकृति व परिस्थितियाँ भी इसी के अनुरूप निर्मित एवं निर्धारित होती हैं। उसे किस योनि में जन्म लेना, उसके माँ-बाप कैसे होंगे आदि। पहले से कर्मानुसार निश्चित होता है। इसलिए यदि जीवन में उन्नत, उत्कृष्ट, परिष्कृत, सुसंस्कृत बनना है तो चित्त को भी उसी के अनुरूप होना चाहिए।

जीवन की प्रकृति को पूरी करने में निमित्त बनने वाली साधना केप्रयोजन को स्पष्ट करते हैं- "निमित्तमप्रयोत्तमं प्रकृतिनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्।"

अर्थात्- निमित्त बनने वाली योग साधना चित्त की प्रकृति बन संचालन नहीं करती है। इससे तो केवल किसान की भांति सामने आ गयी रुकावट को दूर किया जाता है।

यह संसार एक कर्मस्थल है। जहाँ जीव जन्म लेकर फिर से नये कर्मों को करता है। कौन कितनी चेतनता से सद्‌गुणों से युक्त कर्म करता है। "जर्न्मोबधिमंत्रत्पः समाधिजाः सिद्धम्।"

अर्थात्- जन्म से होने वाली, औषधि से होने वाली, मंत्र से होने वाली, तप से होने वाली और समाधि से होने वाली इस तरह से पांच प्रकार की सिद्धियां होती हैं। इसमें यह अर्थ भी स्वतः निहित है कि पूर्व जन्मों में की गई तपस्या, साधना से ही आपको उस प्रकार का घर, परिवार एवं उस तरह का वातावरण मिलता है। तप की प्रक्रिया और समाधि साधना से ही सिद्धियाँ प्रत्यक्ष होती हैं।

तपस्या से चित्त धुलता है। तपस्या सूक्ष्म शरीर का दिव्य स्नान है। तपस्या के द्वारा सूक्ष्म शरीर अपने कषाय कल्भषों से मुक्ति पाता है। तपस्या का तात्पर्य है शुद्ध, श्रेष्ठ एवं शुभ कर्म। इसके द्वारा अंतरिक्ष से प्राण शक्ति मिलती है। जब तक देह मन एवं भावना अंतरिक्ष से, अपने सम्बन्धित प्राण शक्तियों से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर लेते, तब तक वह व्यक्ति अध्यात्म जगत में प्रवेश नहीं कर पाता। अध्यात्म का सार है कि मन एवं हृदय में इतनी पवित्रता एवं दिव्यता भर जाए कि अंतरिक्ष में एवं बाह्य अनन्त प्राणशक्तियों से इनका संपर्क हो जाए और इन पर विनाशकारी तमस् की छाया न पड़े। जब दिव्य रश्मियों का संपर्क सूत्र टूटता-बिखरता है तो तमस् का प्रभाव बढ़ता है और इसके साथ ही दुःख, रोग, शोक, कष्ट, कठिनाइयों का दृश्य उपस्थित होता है। तपस्या के द्वारा अंतरिक्ष की दिव्य रश्मियों से सम्बन्ध गहरा है और तमस की काली छाया का प्रभात कम होता है। तपस्वी सदा प्राणशक्ति से सम्पन्न होता है। और इसका उपयोग वह चमत्कारिक ढंग से करता है। तपस्या के माध्यम से वह सूक्ष्म तत्वों को संयोजित, संग्रहीत करके इच्छित वस्तुओं, परिस्थितियों आदि का निर्माण करता है। हालांकि इससे ऊर्जा का क्षरण होता है, परंतु असंभव को संभव बनाया जा सकता है। ऋषि विश्वामित्र, अगस्त्य,

दधीचि, वशिष्ठ आदि ने तपस्या के शिखर को छुआ है और वर्तमान समय में भी अपनी सूक्ष्म और कारण सत्ता से तपस्या करके सृष्टि के कल्याण में निरत रहते हैं। तपस्या से अध्यात्म का सम्बन्ध है, क्योंकि इससे चित्त परिष्कृत होता है। संकल्पपूर्वक की गई तपस्या चित्त के सभी संस्कारों का दहन करती जाती है परंतु तपस्या के साथ भी एक विडम्बना जुड़ी है कि अकेली तपस्या तपस्वी को अहंकारी एवं दंभी बनाती है। तपस्वी तपस्या के द्वारा असीम ऊर्जा का स्वामी बन जाता है और उसको इच्छाशक्ति से सूक्ष्म एवं स्थूल जगत में घटनाएँ घटने लगती हैं। उसकी इच्छा मात्र से सृष्टि के पंचतत्वों में परिवर्तन होने लगता है और इच्छित संकल्प के अनुरूप ऊर्जा तत्क्षण आकार लेने लगती है। वह जैसा चाहता है वैसा ही होने लगता है। शुभ हो या अशुभ, सभी कुछ उसकी इच्छा एवं संकल्प पर टिका रहता है। इसी कारण तपस्वी की इच्छा ही कर्म मान लिया जाता है। यदि उसे सताने वाले पर कष्ट आए तो ऐसी अनहोनी घट सकती है। हालांकि उस पर इस कर्म का विधान लगता है। कर्म में विधान से तो कोई बच नहीं सकता है, फिर वह कैसे बच सकता है? अतः पवित्रता के बिन विवेक के बिना की गई तपस्या अध्यात्म से दूर है।

अतः तपस्या के साथ स्वाध्याय द्वारा पवित्रता उपार्जन जुड़ा हुआ होना चाहिए। स्वाध्याय से विवेक पैदा होता है, विचारों में प्रखरता एवं उत्कृष्टता पैदा होती है। स्वाध्याय मन एवं विचारों का दिव्य स्नान है। स्वाध्याय से मन भीगता है और चिंतन श्रेष्ठ होता है। वह भ्रम संशय, निराशा, अवसाद, चिंता, कुण्ठा आदि विकारों से विकृत नहीं होता है। स्वाध्याय मनोविकारों को दूर करता है और मानसिक स्वास्थ्य में संबर्द्धन करता है। मानसिक स्वास्थ्य स्वाध्याय से पुष्ट होता है। इससे कल्पनाओं को नई ऊँचाइयाँ मिलती हैं। विचारों को नया आयाम मिलता है। चिंतन परिस्थितियों में सकारात्मक एवं रचनात्मकता आती है। परन्तु तप के बिना स्वाध्याय व्यक्ति को विचारार्थ तप के अभाव में केवल स्वाध्याय व्यक्ति को काल्पनिक बनाता है। जहाँ अनगढ़ विचारों का जमघट होता है।

मानसिक शक्ति तो मात्र तपस्या से मिलती है। ऊर्जा के बिना कल्पनाओं की अकल्पनीय उड़ान भर सकते हैं और कर्म में परिणत हुये बिना ऊँची उड़ान से नीचे गिर जाते हैं और अच्छे विचार का परिणाम ही शुभ कर्मों के साथ होना है, परंतु यदि स्वाध्याय के साथ तपस्या का संयोग घटित हो जाए तो शुभ कर्म प्रयास एवं पुरुषार्थ के सिलसिले को जीवनपर्यन्त चलते रहना चाहिए। रुक-रुक कर चलना, थक-थक कर रुकना, इस तरह से, अभ्यास कभी नहीं सधेगा। इसकी अविराम गति में लय का संगीत होना चाहिए। प्रयास दीर्घकाल और निरंतरता के साथ भाव नहीं निष्ठा एवं अडिग संकल्प का समावेश भी होना चाहिए। अभ्यास से साइको इम्युनिटी विकसित होती है। वैराग्य भी इस कार्य में अति सहायक होता है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि- "दृष्टानु श्रीवकविणमीवटष्टास्य रशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।" अर्थात्- देखे और सुने गये विषयों में सर्वथा तृष्णा रहित चित्त की जो वशीकार नामक अवस्था है, वह वैराग्य है। वैराग्य का जन्म विवेक के गर्भ से होता है। विवेक का अर्थ है सही-गलत की ठीक समझ, उचित-अनुचित का सही ज्ञान, नाशवान और अविनाशी तत्व का बोध, सत् और असत् की पहचान। विवेक

होगा तो जो तत्व हमारे मन को नीचे गिराता है, हम उससे दूर रहेंगे और जो इसे ऊँचा उठाता है, उसका वरण करेंगे। अतः अभ्यास और वैराग्य साइको इम्युनिटी जो संवर्द्धित करने में सबसे अहम् भूमिका का निर्वहन करते हैं।

योग मनोविज्ञान के अनुसार साइको इम्युनिटी के फलक एवं आयाम अति व्यापक एवं विस्तृत है। मनोविज्ञान इसके तत्वों को संवेगात्मक परिपक्वता (इमोशनल मैच्युरिटी) आत्मविश्वास (सेल्फ कॉन्फिडेन्स), सामंजस्य क्षमता (एडजस्टमेंट केपेसिटी) और बेलीबइंग के रूप में निरूपित करता है। अर्थात् साइको इम्युनिटी की परिवर्द्धित अवस्था में व्यक्ति अपने विचारों, भावनाओं एवं व्यवहारों में संतुलित रहेगा। अस्थिर एवं असहाय नहीं होगा। से निराशा, हताशा, अवसाद, चिंता आदि मनोविकार परेशान नहीं करेंगे। वह सुखी, संतुष्ट, स्थिर एवं शांत रहेगा। ये तत्व साइको इम्युनिटी के परिणाम है। यदि किसी व्यक्ति की साइको इम्युनिटी सुदृढ़ एवं विकसित है तो वह मनोविकारों के परे रहकर हजारों मानसिक प्रतिघातों के बीच भी प्रसन्नता की मुस्कराहट विकसित करेगा। तपस्या और अध्यात्म ही साइको इम्युनिटी का सर्वोपरि प्रतीक है।

साइको इम्युनिटी हमारे मन की वह क्षमता है जो विकारों के विषाक्त प्रीााव से हमें अभेद्य कवच प्रदान करती है। मंगलमय वाणी, शुभ कर्म, सच्चितन, सद्भाव के द्वारा इस कवच को और भी अभेद्य किया जाता है। जबकि दूषित चिंतन, ईर्ष्या, द्वेष, निंदा, उद्धिग्नता, चंचलता, अशांति से इस कवच को हम स्वयं छिन्न भिन्न करते हैं। अतः हमारी साइको इम्युनिटी को स्थिर एवं विकसित करने के लिए हमें इनसे दूर रहना चाहिए और सदाचरण में निरत रहना चाहिए।

अतः तप की प्रक्रिया निरन्तर, अविराम गति से चलती रहनी चाहिए। अर्थात् इनके द्वारा मानव एक सिद्ध पुरुष हो जाता है। सामान्य व्यक्ति के व्यक्तित्व और योग सिद्ध या सिद्ध पुरुष के व्यक्तित्व में इतना ज्यादा अंतर होता हे कि इसे रूपांतरित जीवन या रूपांतरित व्यक्तित्व भी कह सकते हैं।

**– रंजना शर्मा**
**नोएडा**

## आँखों में क्या है?

| | | | |
|---|---|---|---|
| पिता की आँखों में | – फर्ज | मित्र की आँखों में | – सहयोग |
| माँ की आँखों में | – ममता | दुश्मन की आँखों में | – बदला |
| भाई की आँखों में | – प्यार | अमीर की आँखों में | – घमण्ड |
| बहिन की आँखों में | – स्नेह | गरीब की आँखों में | – आशा |

# शबरी एवं गीधराज की महानता

मानस में ऐसे भक्त हैं, जो प्रभु को एक क्षण के लिए भी नहीं भुलाते, जैसे- भरतजी, हनुमान जी एवं अनेक मुनिगण। किंतु ऐसे विलक्षण भक्त भी हैं, जैसे- शबरी और गीधराज जटायु, जिनकी स्मृति प्रभु एक क्षण के लिए भी नहीं भुला पाते। युद्ध विजय कर भगवान राम के अयोध्या लौट आने के पश्चात् गोस्वामी जी जो वर्णन करते हैं, उसमें बार-बार यह बात सामने आती है।

सामान्यतया जब कोई व्यक्ति प्रवास से घर लौटता है तो लोग जिज्ञासावश उससे यह पूछते ही हैं कि आपने वहाँ क्या-क्या देखा, किन-किन लोगों से मिले तथा आपको कौन-कौन से विशिष्ट अनुभव हुए? भगवान राम तो चौदह वर्षों की लम्बी अवधि के बाद अयोध्या लौटे थे। भगवान राम की सहृदयता के कारण अयोध्या में उनके अनगिनत मित्र थे। वे सब भगवान राम से जब इसी तरह के प्रश्न करते थे और भगवान राम जो उत्तर देते थे, उसे सुनकर उन सबको बड़ा आश्चर्य होता है; क्योंकि भगवान राम बार-बार एक ही बात दोहराते रहते थे। इस सन्दर्भ में 'गीतावली' और 'कवितावली' में बड़ा अद्भुत वर्णन पढ़ने को मिलता है।

भगवान् राम की इस यात्रा में उनकी भेंट उस समय के विश्व के अग्रणी और महान ऋषि-मुनियों से होती है, जैसे- महर्षि भरद्वाज जी, महर्षि बाल्मीकि जी, महर्षि अत्रि जी, महर्षि अगस्त्य जी। प्रभु यदि चाहते तो बड़े विस्तार से इन सब महापुरुषों से मिलने की घटनाओं का वर्णन कर सकते थे, पर गोस्वामी जी कहते हैं कि मित्रों के बार-बार पूछने पर भी प्रभु दण्डकवन और चित्रकूट में इन महानुभावों के साथ अपने मिलन और संवाद की चर्चा भूलकर भी नहीं करते, अपितु दो ही पात्रों की चर्चा वे बार-बार करते हैं। गोस्वामी जी लिखते हैं-

**मिलि मुनिबृंद फिरत दंडक वन, सो चरचौ न चलाई।**
**बारहि बार गीध सबरी की, बरनत प्रीति सुहाई।।** (विनयपत्रिका 165/3)

प्रभु कहते हैं कि एक तो गीधराज जी मिले और दूसरी शबरी जी मिलीं। भगवान् गीधराज जी के वात्सल्य और भक्तिमती शबरी जी के फलों के स्वाद और रस को एक क्षण के लिए भी नहीं भूल पाते।

गीधराज के सम्बन्ध में विदित ही है कि जब रावण सीताजी का अपहरण कर उन्हें अपने साथ ले जा रहा था, उस समय उन्होंने रावण को चुनौती दी और उससे युद्ध किया। प्रारम्भ में गीधराज ने रावण को कुछ समय के लिये मूर्छित कर दिया, पर अन्त में रावण के द्वारा उनके पंख काट दिये जाने पर वे घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। इसके पश्चात् प्रभु स्वयं गीधराज के पास पहुँचे और उन्हें अपनी गोद में उठा लिया। बाद में वे भगवान राम की गोद में सिर रखकर अपना शरीर छोड़ देते हैं। गीधराज जी ने सीता जी की रक्षा के प्रयास में अपना शरीर

अर्पित कर दिया और धन्य हो गए। प्रभु धर्म गीधराज जी को पिता के समान सम्मान देते हैं और उनकी क्रिया अपने हाथों से करते हैं। भगवान राम ने उन्हें अपना धाम प्रदान किया और कहा कि यदि आप मेरे धाम में जा रहे हैं तो यह मेरी किसी कृपा या उदारता के कारण नहीं अपितु–

**तात कर्म निज तें गति पाई।।** (रा.च.मा. 3/39/18)

आपने जो महानतम कार्य किया है, उस कर्म का ही यह परिणाम है। परोपकार के लिए आपने अपने शरीर को विनष्ट हो जाने दिया, इसलिये आपसे बढ़कर महान् और कौन होगा। इस प्रकार गीधराज जी भगवान् राम के पिता का स्थान पा गए।

शबरी जी ने सीताजी को कभी नहीं देखा था; क्योंकि भगवान् राम लक्ष्मण जी के साथ शबरी जी के आश्रम में श्री सीताजी से वियोग होने के बाद ही पधारते हैं। आश्चर्य होता है कि जिन शबरी जी ने सीता जी के दर्शन तक नहीं किये हैं, भगवान राम उनसे सीताजी का पता और उन्हें पुनः पाने का उपाय पूछते हैं। वे कहते हैं–

हे भामिनी! मेरी प्रिया जनकनन्दिनी का हरण हो गया है। उन्हें ढूँढ़ने के लिए ही मैं इस समय वन में भ्रमण कर रहा हूँ। क्या आप उनकी सुधि जानती हैं? और यदि आपको यह ज्ञात है तो आप मुझे बतायें कि उन्हें पुनः प्राप्त करने का उपाय क्या है?

भगवान् राम के प्रश्न को सुनकर शबरी जी को बड़ा संकोच होता है। वे कहती हैं– 'प्रभु! आप तो सब कुछ जानते हैं, पर जब आपने प्रश्न किया है तो फिर इस दृष्टि से मेरा यह कर्तव्य बन जाता है कि इस विषय में मैं कुछ कहूँ। प्रभु! मेरा आपसे अनुरोध है कि आप कृपा करके पम्पासर की यात्रा करें, जहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी और उसके बाद की सारी बातें उनके द्वारा आपको ज्ञात होंगी।' भगवान राम शबरी जी के इस कथन को स्वीकार कर पम्पासर की यात्रा करते हैं, जहाँ ऋष्यमूक पर्वत के निकट उनकी हनुमान जी से भेंट होती है और हनुमान जी की प्रेरणा से सुग्रीव से मिलन होता है, मित्रता होती है।

यद्यपि आगे के प्रसंग में हनुमान जी की ही भूमिका प्रमुख है, पर शबरी जी ने तो सुग्रीव जी का ही नाम लिया था, इसलिये भगवान राम शबरी जी के इस वाक्य को कितना महत्व देते हैं, यह बात बाद के प्रसंगों में स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है। आगे चलकर सुग्रीव जब अपनी आत्मकथा सुनाते हैं तो इसे सुनकर लक्ष्मण जी बहुत प्रसन्न नहीं दिखायी देते; क्योंकि उनकी आत्मकथा में बार-बार उनकी दुर्बलता, कायरता तथा अनेकानेक कमियों का ही संकेत मिलता है। लक्ष्मण जी को विशेष रूप से सुग्रीव की यह बात अच्छी नहीं लगती कि सुगीव ने सीता जी का हरण होते हुए देखा, विलाप करते हुए देखा और सीता जी ने उनकी ओर देखकर कुछ आभूषण और वस्त्र खण्ड भी गिराये, पर वे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। एक अबला को ऐसी स्थिति में देखकर भी उन्होंने उनकी कोई सहायता नहीं की। वे आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे– 'ऐसे कायर व्यक्ति को प्रभु ने क्यों इतना सम्मान दे दिया और अपना मित्र

बना लिया?'

लक्ष्मण जी से रहा नहीं गया। उन्होंने पूछ लिया– 'प्रभु मैं जानना चाहता हूँ कि सुग्रीव में आपको ऐसी कौन–सी विशेषता दिखायी पड़ी कि वह आपकी मैत्री का अधिकारी बन गया?' प्रभु ने कहा– 'लक्ष्मण! क्या तुम इस बात को भूल गए कि भक्तिमती शबरी से मेरा मिलन हुआ था तो उन्होंने क्या कहा था? उन्होंने मेरे पूछने पर यही तो कहा था कि–

**पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहं होइहि सुग्रीव मिताई।।** (रा.च.मा. 3/36/11)

सुग्रीव से मित्रता होगी। अतः मैं तो सुग्रीव से मित्रता करके शबरी जी के आदेश का पालन कर रहा हूँ। जब शबरी जी सुग्रीव को इतना महत्व देती हैं, तो फिर मेरे लिये उससे मित्रता करने से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ कर्तव्य पालन का कार्य हो ही नहीं सकता। लक्ष्मण जी को मौन हो जाना पड़ा। उन शबरी जी की विशेषताओं का क्या वर्णन किया जा सकता है, जिसके अनुरोध को प्रभु आज्ञा मानकर सका पालन करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

शबरी जी में नौ भक्तियाँ विद्यमान हैं, पर हम उनका नाम तक नहीं जानते। 'शबर' जाति में उनका जन्म हुआ था, इसलिए लोग उन्हें 'शबरी' कहने लगे, जिनका नाम तक ज्ञात नहीं और जाति–कुल की दृष्टि से भी विशिष्ट न होने पर भी, शबरी 'मानस' की एक दिव्य और विलक्षण नारी पात्र है, जो प्रभु की शक्ति रूपा श्री सीता जी को पाने का उपाय बताती है।

शबरी जी में भक्ति की परिपूर्णता तो है ही, वे दिव्य योग सम्पन्न भी हैं। अन्य ऋषि मुनियों का भी भगवान राम से मिलन होता है और बाद में प्रभु सबसे विदा भी लेते हैं, पर शबरी जी प्रभु से मिलने और उनसे संवाद के बाद फिर प्रभु से अलग नहीं हुई। गोस्वामी जी कहते हैं कि सच्चे योग की सिद्धि तो शबरी जी के ही जीवन में दिखायी देती है। वे योगाग्नि से अपना शरीर त्याग देती है, और उस पद को पा लेती हैं, जहाँ कभी वियोग न होकर शाश्वत् मिलन–ही–मिलन है।

**–अरविन्द कुमार देवलिया**

# तीन चीजें

| | | |
|---|---|---|
| तीन चीजें किसी का इन्तजार नहीं करती | – | समय, मौत, ग्राहक |
| तीनों का सदा सम्मान करें | – | माता, पिता, गुरु |
| तीन चीजों से हमेशा बचने की कोशिश करें | – | बुरी संगत, स्वार्थ, निन्दा |
| तीन चीजें कोई चुरा नहीं सकता | – | अक्ल, चरित्र, हुनर |
| तीन चीजों में मन लगाने से उन्नति होती है | – | ईश्वर, परिश्रम, विद्या |
| तीन चीजें जीवन में एक बार मिलती हैं | – | माता, पिता, यौवन |

# मन पर नियंत्रण

ॐ हरि तत्सत् शिवोऽहम् सोहम्। परम पूज्य गुरु महाराज ब्रह्मलीन स्वामी श्री शुकदेवानन्द जी को सत्-सत् नमन। आपका आशीर्वाद सदैव हम पर बना रहे। शिवोऽहम्।

वर्तमान समय में मनुष्य की प्रवृत्ति सांसारिक मोह-माया में इतनी अधिक उलझ चुकी है कि वह चाह कर भी उससे बाहर नहीं निकल पा रहा है। उससे बाहर निकलने के बजाय उसमें और लिप्त होता जा रहा है। जबकि वह यह जानता भी है कि शरीर नश्वर है परन्तु फिर भी इसके उपभोग हेतु ऐन-केन-प्रकारेण धन इकट्ठा करने और अनेकानेक संसाधन को जुटाने में लगा पड़ा है और वह आपसी प्रति स्पर्धा करते हुए कि मेरे पास दूसरे से कम न रहे, इसी में अपनी मनुष्य योनि को बेकार ही व्यर्थ किये जा रहा है। जबकि ईश्वर की दृष्टि से मनुष्य योनि उसकी सबसे उत्तम संरचना है क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य को सोचने विचारने की और सत्कर्मों के द्वारा अपने आने वाले जीवन को संवारने की बुद्धि प्रदान की है, जो अन्य जीवों में नहीं है। ईश्वर की यह योनि अन्य योनियों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य ने इसका उपयोग सृष्टि के विकास में तो किया परन्तु वह इसमें इतना अन्धा हो गया कि उसने प्रकृति के साथ न जाने अनेका प्रकार की छेड़छाड़ कर डाली। चाहे वह पेड़ काटना हो, वातावरण प्रदूषित करना हो, इत्यादि। उसने विकास/आधुनिकीकरण का प्रयोग करते-करते प्रकृति का दोहन ही किया और सतत् करता आ रहा है। मनुष्य द्वारा प्रकृति के साथ किये गये छेड़छाड़ के दुष्परिणाम आज हमारे सामने हैं, जिनको कोई झुठला नहीं सकता।

यदि हम प्राचीन भारत की बात करें तो हमारे ऋषि मुनियों ने ईश्वर द्वारा दी गयी बुद्धि का प्रयोग संसार के उद्धार में ही किया है। उन्होंने मानव जाति की जीवन शैली कैसी होनी चाहिए इसका वेदों में स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। वेदों का अध्ययन करना और उसका अनुसरण करना इतना आसान नहीं है एवं यदि कोई इसका अनुसरण कर लेता है तो वह इस सांसारिक मोह-माया से विरक्त होकर ईश्वर द्वारा प्रदत्त इस सर्वोच्च मनुष्य योनि को उपयोगी बनाते हुए सांसारिक कर्म करता हुआ अन्त में जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो सकता है।

वेदान्त के सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य को अपने भीतर के विपरीत/बुरे भावों के विचारों के प्रवाह को तोड़ना होता है और ब्रह्म भाव के प्रवाह को सतत् चालू करना होता है। ब्रह्म चिन्तन की धारा ठीक उसी प्रकार सतत् चलनी चाहिए जिस प्रकार जलाया हुआ दीपक लगातार जलता रहे और यदि बुझ जाये तो फिर जला दिया जाये। इसी प्रकार ब्रह्म भाव का दीप लगातार अपने भीतर जलता रहना चाहिए, जिससे वह अज्ञान के अन्धकार के भ्रम से सदैव बच सके। यही लक्ष्य तक पहुंचने का मार्ग है। यदि विपरीत विचार आयें तो उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिए, उनको अपने पर हावी भी नहीं होने देना चाहिए। उनको अहितकारी मानते हुए बाहर निकाल देना चाहिए। जैसे किसी डायबिटीज के मरीज को मीठा देखकर मन कहता है कि थोड़ा सा खा लूँ, कुछ नहीं होगा परन्तु यदि मन की बात सुनी तो उसका नुकसान होगा। तो हमें यह भी समझना होगा कि ये मन भी बड़ा धूर्त होता है, ये हमें प्रलोभन देता है, कई सारे रास्ते अपनाता है। यहां तक कि यह अपनी ही बुद्धि को गुमराह भी करता है। यदि हमने इस मन को एक बार भी छूट दे दी तो समझो सब गया। जैसे यदि हमने व्रत के दिन थोड़ा सा भी अन्न खा लिया तो समझो व्रत खत्म। इसीलिए

जो नहीं करना उसे बिलकुल मत करो। जब हमें कोई चीज करनी ही नहीं है तो उसे एक बार भी क्यों किया जाये। यदि एक बार करोगे तो फिर मन कहेगा कि 2-4 बार में क्या जाता है और इस प्रकार वह रुकेगा नहीं। यही रास्ता है मन के भटकने का। यदि मन की सुनोगे और अपने पर से नियंत्रण खो दोगे तो यह धोखा आप अपने से ही करोगे। जैसे कोई बीमार आदमी स्वस्थ होना चाहे और नियम से दवा न खाये तो धोखा वह अपने साथ ही कर रहा है और यदि डॉक्टर ने परहेज बताया तो वह दवा तो खाता रहे पर परहेज नहीं करे तो समझो वह अपने ही पांव पर कुल्हाड़ी मार रहा है। दोनों ही बातों को ध्यान से सुनना और जो मना है उसका त्याग करना, आवश्यक है।

मन को नियंत्रित करना है तो यह स्वयं में निष्ठा करनी होगी कि मैं ही ब्रह्म हूँ और सामने वाला भी ब्रह्म है। सामने वाला भी उतनी ही इज्जत का पात्र है जितने की हम स्वयं उनके लिए इज्जत चाहते हैं। उनती ही प्रसन्नता उसे भी चाहिए जितनी हमें। उसे भी उस बात पर क्षमा चाहिए जिस पर हम खुद चाहते हैं। जब हम ज्ञानी होते हुए क्षमा चाह रहे हैं तो वो तो अज्ञानी है। उसे भी क्षमा करना सीखो। जो दूसरों को अपने बराबर नहीं मानता वह न तो ब्रह्म है अपितु वह ब्रह्म से बहुत दूर है। वैसे यदि देखा जाये तो जो हम, मेरा-मेरा करते रहते हैं उसके भी कुछ फायदे हैं। जैसे यदि हमें नारियल फोड़ना हो तो क्या हम अपने मारबल के फर्श पर फोड़ेंगे? नहीं। ठीक इसी प्रकार उपरोक्त अनुभूति हो जाने पर हम नारियल दूसरे के फर्श पर भी नहीं फोड़ते। तो उपरोक्त अनुभूति होने पर भी मनुष्य सभी के साथ समान व्यवहार करता है जैसा वह स्वयं के लिए दूसरों से अपेक्षा करता है।

वास्तव में मनुष्य अपने मन पर नियंत्रण किये बिना मोक्ष चाहता है पर वह मोक्ष से डरता भी है कि मन और देह के समाप्त हो जाने पर सारा आनन्द ही समाप्त हो जायेगा, यह सोचता है कि उसका सारा मनोरंजन खत्म हो जायेगा जबकि मनुष्य को मनोरंजन के बजाय मनोभंजन करना चाहिए। परन्तु वह सोचता है कि मन और तन के न रहने पर वह शून्य हो जायेगा। जबकि देखा जाये तो मन के न रहने पर काल नहीं रहता और तन के न रहने पर देश नहीं रहता। जिस प्रकार घड़े के फूट जाने पर जो घटाकाश है वह नहीं रहता आकाश अनन्त हो जाता है। उसी प्रकार यदि मन नहीं रहे तो आत्मा व्यापक हो जाती है। और जब आत्मा व्यापक हो जाती है तो सारा संसार ब्रह्ममय हो जाता है। शिवोऽहम्।

– वैभव वर्मा

## कड़वे प्रवचन

दान देना उधार देने के समान है। देना सीखो क्योंकि जो देता है वह देवता है और जो रखता है वह राक्षस। ज्ञानी तो इशारे से ही देने को तैयार हो जाता है मगर नीच लोग गन्ने की तरह कुटने-पीटने के बाद ही देने को राजी होते हैं। जब तुम्हारे मन में देने का भाव जागे तो समझना पुण्य का उदय आया है। अपने होश-हवाश में कुछ दान दे डालो क्योंकि जो दे दिया जाता है। वह सोना हो जाता है। और जो बचा लिया जाता है वह मिट्टी हो जाता है। भिखारी भी भीख में मिली हुई रोटी तभी खाये तब उसका एक टुकड़ा कीड़े-मकोड़े को डाल दे। अगर वह ऐसा नहीं करता तो सात जन्मों तक भिखारी ही रहेगा।

संकलन– पंकज मिश्रा

# ज्ञानानुसार आचरण

सैद्धांतिक रूप से हम प्यार और एकता की सभी अच्छी बातें सीखते हैं, लेकिन हम इसे अपने जीवन में व्यवहार में लाने में असफल रहते हैं।

मैं ज्योतिर्मय चेतना हूँ और वही सभी में निवास करती है, यह ज्ञान तब विस्मृत हो जाता है जब हम जीवन में विभिन्न परिस्थितियों का सामना करते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि मनीषा अर्थात् ज्ञान की अनवरत धारणा नहीं है।

आदि शंकराचार्य के जीवन की एक सुंदर कहानी है जो इस विस्मृति को दर्शाती है।

ऐसा हुआ कि एक बार आचार्य वाराणसी में काशी विश्वनाथ मंदिर की ओर जा रहे थे और उसी गली में एक चांडाल उनकी ओर आ रहा था। उसे देखते ही आचार्य ने 'गच्छ गच्छ' कहा और उसे हट जाने को कहा। यह सुनकर चांडाल ने पूछा कि ऐसा क्या है जो आप हटाना चाहते हो? यदि शरीर, तो आपके और मेरे शरीर में कोई भेद नहीं, दोनों ही अन्न से बने हैं। या क्या आप चाहते हैं कि चेतना चेतना से दूर हो जाए?

यह सुनकर आचार्य को शीघ्र अपनी त्रुटि का आभास हुआ। शंकराचार्य ने तब पाँच श्लोकों में उत्तर दिया और इस रचना को मनीषा पञ्चकम् के नाम से जाना जाता है। पहला श्लोक कहता है–

**जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते**
**या ब्रह्मादि पिपीलिकान्ततनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी।**
**सैवाहं न च दृश्यवस्तित्वति दृढप्रज्ञापि यस्यास्ति चे**
**च्चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम।।1।।**

"यदि किसी मनुष्य को यह दृढ़ ज्ञान हो गया है कि वह दृश्य नहीं अपितु शुद्ध चैतन्य है जो जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का प्रकाशक है और जगत के दृष्टा रूप में ब्रह्मा से लेकर चींटी तक समस्त प्राणियों में विद्यमान है, वह मेरा गुरु है, चाहे वह ब्राह्मण हो या चांडाल। यह मेरा मत है।"

कहानी के अनुसार चांडाल कोई और नहीं बल्कि स्वयं भगवान शिव थे। उन्होंने शंकराचार्य को सीखे हुए ज्ञान की सदैव स्मृति रखना और उसके अनुसार ही अपना आचार व्यवहार करने के महत्व का आभास कराया।

वह ज्ञान जो पुस्तकों में ही रह जाये उसका क्या लाभ। उसको व्यवहार में लाएं, उसको अपने दैनिक चरित्र में ढालें और ये ज्ञान ओजस्वी हो, विस्मृत न हो, ऐसी ईश्वर से प्रार्थना करें। शिवोऽहम्।

**– गौरव वर्मा**

# संस्कृति और जीवन मूल्य

भारतीय संस्कृति में आदर्श की अनुप्रेरणा रही है, क्योंकि इस संस्कृति के संवाहक वैदिक मन्त्र-दृष्टा, ऋषि-महर्षि, मुनि, योगी, तपस्वी, महापुरुष रहे हैं। उन्होंने मानवीय जीवन मूल्यों को समाज के सापेक्ष प्रस्तुत करने के महान् प्रयास में अपना आदर्श उपस्थित किया है। भारतीय संस्कृति को शाश्वत् प्रवाही बनाते हुए उन्होंने यह अनुभव किया है कि मानवीय आचरण, जीवन जीने के सुन्दर सोपान हों, अतः जीवन संचालन में मानदण्ड अवश्य होने चाहिए। वे मानदण्ड ही जीवन मूल्यों के रूप में यहाँ प्रतिष्ठा पा सके हैं। भारतीय संस्कृति के कर्णधार मानव जाति की भावी आशा को इन्हीं जीवन मूल्यों में निहित मानते हैं। मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाने का श्रेय उन उदात्त जीवन मूल्यों को है जिसके माध्यम से वह अपना सात्विक जीवन बिता रहा है। वस्तुतः किसी भी राष्ट्र का मूल्यांकन वहाँ के जन समाज के आचरणगत मूल्यों के आधार पर ही होता है। प्रत्येक राष्ट्र की एक परम्परागत संस्कृति होती है, जिसका सृजन उन मूल्यों के आधार पर होता है, जिन्हें वहाँ के महापुरुषों ने अपने जीवन में अपनाया है। वस्तुतः उन मूल्यों के और उनके माध्यम से ही उनका चरित्र एवं व्यक्तित्व गौरवमय बनकर स्वर्णाक्षरों में अंकित हुआ है। किसी भी देश की भौतिक प्रगति का भी महत्व है, लेकिन भौतिक प्रगति को उस देश का शरीर कहा जा सकता है, जबकि उसमें प्राणतत्व का संचार करने वाले जीवन मूल्य ही है। इससे किसी भी व्यक्ति, जाति, समाज, देश व राष्ट्र के जीवन मूल्यों का महत्व स्पष्ट हो जाता है। भारतीय जीवन मूल्यों को जानने के लिए उनके आधार को समझना आवश्यक है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने मात्र पशुवत् जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा कुछ और अच्छी तरह जीवन जीने की कला सीखनी चाही होगी। समूह में जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा सम्भवतः आत्मरक्षा के सिद्धान्त से मिली होगी। यही आत्मरक्षा ही सम्पूर्ण समूह की रक्षा में परिणत हो गयी। इसी से मानव को अमूल्य जीवन का महत्व समझ में आया। मानव में जीवन की आस्था उत्पन्न हो गयी और वह अपने समूह व समाज के सभी मनुष्यों के जीवन के महत्व को अनुभव करने लगा। वस्तुतः इन मूल्यों का आधार श्रुति, पुराणों में अन्तर्निहित सत्य एवं महापुरुषों का अनुभूत सत्य एवं सदाचरण ही है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय जीवन मूल्य के निम्न आधार हो सकते हैं-

(1) जीवन के प्रति आस्था और लगाव।
(2) विवेकशील चिन्तन।
(3) परिवेश-बोध।
(4) लोक-कल्याण की चेतना और
(5) वैयक्तिक उदात्तीकरण अथवा आन्तरिक उन्नयन।

यद्यपि वैज्ञानिक एवं युक्तिवादी ज्ञानोदय के आधुनिक काल में जीवन मूल्यों का स्वरूप तेजी से बदलने लगा है तथापि भारतीय संस्कृति ने जीवन मूल्यों को शाश्वत् रूप में

प्रतिस्थापित कर दिया है, ये आज सत्य की कसौटी पर खरे हैं। यदि नैतिकतापूर्ण दृष्टि से जीवन मूल्यों की मीमांसा की जाये तो भारतीय जीवन मूल्य अन्य संस्कृतियो के जीवन मूल्यों की अपेक्षा निश्चित, अधिक नैतिक एवं लोकोत्तर सिद्ध होंगे। भारतीय संस्कृति रूपी समुद्र की अथाह गहराई में छिपे ये जीवन मूल्य संस्कृत साहित्य में रत्नों की भांति आज भी सुरक्षित है। संस्कृत का विपुल साहित्य सच्चे अर्थों में मानव जीवन का साहित्य है। ठीक है कुछ कृतियाँ भले ही त्याग या वैराग्य की उपदेष्टा हों, पर ये सामान्यत: जीवन मूल्यों की अवज्ञा नहीं करती। गीता में सुस्पष्ट रूप में उपदिष्ट है कि त्याग या वैराग्य की भावना को छोड़कर कर्तव्य कर्म का आचरण करना ही जीवन मूल्य है।

**(सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–** *(1) भारतीय संस्कृति, बाबू गुलाबराय, पृष्ठ 85, (2) भारतीय जीवन मूल्य, डॉ. धर्मपाल मैनी, पृष्ठ 03, (3) भारतीय जीवन मूल्य, डॉ. धर्मपाल मैनी, पृष्ठ 05-06, (4) भारतीय जीवन मूल्य, डॉ. धर्मपाल मैनी, पृष्ठ 05, (5) श्रीमद्भागवद् गीता, अध्याय 3 श्लोक 20)*

**– डॉ. अनिल कुमार दुबे**

एसोसिएट प्रोफेसर-श्रीमती विद्यावती कॉलेज ऑफ एजुकेशन गोरामछिया, झाँसी

## जल ही जीवन है

- शरीर का आंतरिक तापमान अधिक होता है। अगर हम अत्यधिक ठण्डा पानी पीते हैं तो वह आंतरिक अंगों की कार्य क्षमता को शिथिल कर देता है।
- सुबह खाली पेट पानी का सेवन शरीर के लिए बहुत लाभप्रद है, एकारण यह है कि सुबह खाली पेट होने से शरीर पानी को आसानी से ग्रहण कर लेता है और आंतरिक अंगों की सफाई हो जाती है। प्रातःकाल पानी पीने से आंतों में गति आती है, जिससे आंते मल के अनावश्यक भार से मुक्त हो जाती हैं और उनमें रक्त संचार व्यवस्थित होता है।
- जब भोजन ठीक से न पचे तब कुनकुना पानी या कुनकुने पानी में नींबू डालकर सेवन करने से लाभ होता है।
- अत्यधिक ठण्डा व अत्यधिक गर्म दोनों ही जल शरीर के लिए हानिकारक होते हैं।
- जब भी प्यास लगे तब जल अवश्य लें। शरीर के अन्य वेगों की तरह इस वेग को रोकना स्वास्थ्य की दृष्टि से ठीक नहीं होता।
- कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि जब पानी के सेवन से बचना चाहिए जैसे जब तेल श्वांस गति हो, शौच के तुरंत बाद, खड़े होकर, व्यायाम व परिश्रम के तुरंत बाद, तेज धूप से आकर, मूंगफली, केला, अमरूद, सीताफल, तरबूज, खरबूज, ककड़ी आदि लेने के तुरन्त बाद, भोजन के तुरंत पहले व बाद में पानी का सेवन नहीं करना चाहिए।
- चूंकि जल ही जीवन है, इसलिए आने वाली गर्मियों के थपेड़ों से बचाव हेतु जीवन को जल से अभिसिंचित अवश्य करते रहें।

# साधना का सेतु

**"भगवत्कृपा की प्राप्ति के लिए हृदयस्पर्शी मर्मान्तक साधना अत्यावश्यक है।"**

इस कथन की पुष्टि हेतु रामचरित मानस सरोवर के कुछ ऐसे ही बिन्दुओं पर प्रकाश डालने के लिए मुझे मानस सत्संग से प्रेरणा मिली और यहाँ मैं अपने गुरुजनों के प्रवचनों से प्रेरित हो कर उनके कथनों को कलमबद्ध करने का प्रयास कर रही हूँ।

भगवान राम को जब ज्ञात हुआ कि सीताजी को लंका का राजा रावण हरण करके ले गया है तो वे सुग्रीव की सहायता से वानर एवं भालुओं की सेना लेकर समुद्र तट तक आ पहुँचे। वहाँ पर समुद्र देव के द्वारा उन्हें ज्ञात हुआ कि उनकी सेवा में नल और नील नाम के दो ऐसे वानर हैं जिन्हें श्रापवश ये वरदान है कि वे जिस किसी भी वस्तु को छू लेंगे वो जल में नहीं डूबेगी, तैरती रहेगी–

**नाथ नील नल कपित द्वौ भाई। लरिकाई रिषि आसिष पाई।।**
**तिन्हें के परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।।**

तदुपरान्त प्रभु श्रीराम की आज्ञा एवं अनुमति से पर्वतों के शिलाखण्डों से सेतु बन्धन का कार्य आरम्भ किया गया।

**अति उतंग गिरि पादप भीलहिं लेहिं उठाई।**
**आनि देहि नल नीलहिं रचहिं ते सेतु बनाई।।**

परन्तु ये क्या नल और नील जिन शिलाखण्डों को समुद्र में डालते वे डूबते तो नहीं थे परन्तु एक साथ स्थापित भी नहीं हो पा रहे थे। पत्थरों के भिन्न-भिन्न दिशाओं में चले जाने से पुल का निर्माण प्रारम्भ नहीं हो पा रहा था। शायद नल और नील को अपनी शक्ति का अहं भाव इस कार्य में बाधक बन रहा था तभी उन्हें जामवंत की बात याद आई–

**राम प्रताप सुमिरि मन माहीं। करहुँ सेतु प्रयास कछु नाहीं।।**
**राम चरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू।।**

अन्ततः आपस में मंत्रणा करके उन्होंने इस तथ्य को समझा कि 'रामकृपा' बिन कुछ भी सम्भव नहीं है, हम तुच्छ वानर इस अगाध समुद्र को कैसे पार कर सकते हैं और बस इसी भाव से प्रेरणा लेकर उन्होंने दो शिला खण्डों को लेकर एक पर प्रभु श्रीराम के नाम का 'रा' लिखा एवं दूसरे शिलाखण्ड पर 'म' लिखकर ज्यों ही समुद्र में 'जय श्री राम' के उद्घोष के साथ प्रवाहित किया वे दोनों शिला खण्ड आपस में मिल गये। बस फिर क्या था इसी प्रयास के सहारे नल और नील ने सेना के सभी वानरों एवं भालुओं की सहायता से बड़े-बड़े शिलाखण्डों को एकत्र कर इस पार से लंका तट तक समुद्र पर दस योजन चौड़ा एवं सौ योजन लम्बा 'रामसेतु' निर्माण कर दिया।

**बांधा सेतु नील नल नागर। राम कृपाँ जसु भयउ उजागर।।**

सेतु निर्माण के उपरान्त वानरों एवं भालुओं में एक असमंजस व्याप्त हो गया कि

हमारी असंख्य सेना इस पुल से कितने दिनों में पार उतर पाएगी। प्रभु श्रीराम ने सेना में व्याप्त इस शंका के समाधान हेतु ज्यों ही उस सेतु पर अपने चरण-कमलों को रखा वैसे ही सागर में निवास करने वाले करोड़ो जल जीव श्रीराम के दर्शन हेतु सेतु के दोनों ओर एकत्र हो गए।

**देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भये सब जलचर वृंदा।।**

उन जल जीवों पर दयानिधि श्रीराम ने अपने हाथ ऊपर उठा लिए तब वे जलचर जड़वत् स्नेहासिक्त अडिग हो गए एवं पुल का विस्तार जो मात्र दस योजन चौड़ा था वो तीस योजन हो गया और समस्त सेना उन जल चरों के ऊपर होकर अल्प समय में ही लंका तट पर पहुँच गई।

**सेतुबंध कई भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।**
**अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं।।**

श्रीराम की इस कृपानुभूति से वानर, भालु, जामवन्त एवं हनुमान सभी गद्‌गद् हो उठे थे किन्तु पूरी सेना के मन में श्रीराम की कृपानुभूति का एक रोमांचक संशय था कि यदि प्रभु अपनी कृपा मात्र से ही सेतु का निर्माण कर सकते थे तो समुद्र देव से प्रार्थना में तीन दिनों का समय क्यों नष्ट किया। समुद्र के जलजीव तो उस समय भी श्रीराम की कृपा दृष्टि से ऊपर आ सकते थे। सेना का यह संशय अंततः श्रीराम के संज्ञान में आ ही गया और तब समस्त सेना की उत्कण्ठा को शांत करने के लिए उन्होंने परम ब्रह्म परमेश्वर को ही इस कृपा का श्रेय देते हुए समझाया-

"इस संसार सागर में कोई भी कार्य सतत् परिश्रम एवं लक्ष्य-साधना के बिना पूर्ण नहीं होता। प्रत्येक कार्य में लगन परिश्रम एवं उस लक्ष्य को प्राप्त करने की उत्कण्ठा एवं साधना का होना परमावश्यक होता है। कितना भी शक्तिशाली जीव क्यों न हो जब तक अपने लक्ष्य के प्रति सजग एवं उद्यमी नहीं होगा तब तक सफलता का वरण नहीं कर सकेगा।

पाषाण खण्डों का यह पुल तुम सब की अटूट साधना एवं उद्यम का एक 'भक्ति साधना सेतु' है जो ईश्वर की कृपानुभूति पाकर अचल और अमर हो गया। यदि आप सब अपना अटूट परिश्रम एवं लक्ष्य प्राप्ति में अपनी साधना और दृढ़ता को न दिखाते तो ये जल जीव भी आपका सहयोग नहीं करते क्योंकि जल जीवों का एकत्र होना ईश्वर की ही कृपानुभूति है।"

इस चराचर जगत में कोई भी प्राणी अपनी मनश्चेतना में यदि साधना एवं उद्यम को प्रमुख स्थान देता है तो उसे कोई भी लक्ष्य असंभव या अप्राप्य नहीं होगा। कहा भी गया है-

**उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।**
**न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।**

**अर्थात्**- कार्यों की सिद्धि प्रयत्नों के करने से ही सम्भव होती है। केवल मन में विचार कर लेने मात्र से ही नहीं, ठीक उसी प्रकार जैसे कि सोते हुए (प्रयत्नहीन अवस्था) शेर के मुँह में भूख-शांति के लिए जानवर स्वतः ही प्रवेश नहीं करते हैं।

अन्ततः निष्कर्ष यही है कि जब तक हम स्वयं अपनी साधना, अपने परिश्रम को लक्ष्य-प्राप्ति में नहीं लगायेंगे, हमें ईश्वर की कृपा प्राप्त हो ही नहीं सकती। क्योंकि ईश्वर भी उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं। इसी कथन की पुष्टि अंग्रेजी भाषा की ये कहावत करती है।

**"God Helps Them Who Help Themselves"**

वानर एवं भालुओं द्वारा निर्मित पुल उन की साधना का सेतु था जो 'रामकृपा' के मिश्रित हो जाने से 'अमर राम सेतु' बन गया।

**जा पर कृपा राम की होई, ता पर कृपा करे सब कोई।** जय श्री राम।

– **कुमकुम बिसरिया**, झाँसी।

## मुमूर्ष हेतु गोबर से भूमिलेपन

मनुष्य के शरीर में जो–गुदा, लिंग, मुख, दो कर्ण, दो नासिका और दो नेत्र–ये नौ छिद्र प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं, इनके अतिरिक्त कपाल में एक गुप्त दशम द्वार भी है। इनमें उत्तरोत्तर ऊपर के द्वार से प्राण का उत्क्रमण हो निकले, यही एक प्रयत्न मृत्युकालीन समस्त विधियों का मूलभूत उद्देश्य है। मरने के बाद जीव की क्या दशा होगी, अर्थात् उसकी सद्गति होगी या दुर्गति? इस परोक्ष रहस्य को ठीक–ठीक तो स्वयं भगवान या त्रिकालदर्शी महात्मा ही जान सकते हैं, परन्तु मरणकालीन प्राणों के उत्कृमण का मनन करने से इस विषय में प्रत्येक शास्त्रव्यसनी बुद्धिमान को कुछ आभास अवश्य मिल जाता है। यदि किसी भाग्यशाली मनुष्य के प्राण स्वमेव कपाल का भेदन करके प्रयाण करते हैं तो वह सर्वोत्तम मोक्षगति को प्राप्त हुआ माना जाता है। वह चौरासी लाख योनियों के चक्कर से छूट गया है, अब वह 'न स पुनरावर्तते' का अधिकारी बन गया है। मृत्युकालीन सब विधियाँ केवल इसी एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए की जाती हैं। अतः भूमि पर चित्त लिटाने की दशा में मनुष्य के मलद्वार का भूमि से संस्पृष्ट रहना अनिवार्य है। और भूमि का आकर्षण सर्वथा अशक्त हुए प्राणों को चुम्बक की भांति खींचकर गुप्तद्वार से बचने के लिए मुमूर्ष मनुष्य के शरीर और भूमि दोनों के मध्य में कोई ऐसा पदार्थ होना चाहिए, जो कि 'शुचि' (असंक्रामक) नानकण्डक्टर हो। सभी वैज्ञानिक गोबर को पवित्र द्रव्यों में अन्यतम स्वीकार करते हैं। अर्थात् बिजली का करण्ट उसे पार करके दूसरे द्रव्य में प्रवेश नहीं कर सकता। अतः हमारे शास्त्रों में गरीब–अमीर सबको सर्वत्र सुलभ गोबर को ही भूमिलेपन के लिए उपयुक्त माना गया है। गोबर की विद्युत निरोधकारिणी शक्ति लोक में प्रायः प्रसिद्ध है। अनेक स्थानों में आकाश से गिरने वाली बिजली गोबर के ढेर पर गिरने की दशा में वहीं समा जाती है। इसके अतिरिक्त रोगी के स्थान में कई दिनों तक अनेक प्रकार के कीटाणुओं का सम्पर्क रहना स्वाभाविक है। कई प्रकार के संक्रामक रोगों के कीटाणुओं का विद्यमान होना भी अनिवार्य है। इसलिए मृत्यु के समय उपस्थित रहने वाले कुटुम्बीजनों की स्वास्थ्य–संस्था के विचार से भी नानाविध कीटाणुओं को विनाश कर सकने की क्षमता रखने वाले तैजस् जैसे तत्वों से परिपूर्ण गाय के गोबर से चौका लगाना (लीपना) बहुत आवश्यक है।

# ॐ श्री सद्गुरु चालीसा

ॐ वक्र बदन सिद्धि सदन ज्ञान पयोधि सुकेश।
गुरु मूरति कल्याणप्रद, सुमिरत कटहिं कलेश॥
जय गुर्देव ज्ञान के दाता, भक्त जनों के भाग्य विधाता।
तुम विधि हरिहर देव समाना, तुम्हरो यश बहु शास्त्र बखाना।
दीन बन्धु प्ररणारति स्वामी, देव नमामि नमामि।
उर अज्ञान रूप अंधियारा, ज्ञान भानु दे करहुं उजारा।
भव सागर में डूबत नैया, तब तुम ही हो साथ खिवैया।
तुम पद रज भक्त शीश लगावें, पाप ताप बन्धन कट जावें।
जन प्रहलाद दैत्य कलि करुणा, तुम नरसिंग रूप विकराला।
मंत्र जाप मम प्रण विश्वासा, महामोह तम होत प्रकाशा।
काम क्रोध मद नासत तबहिं, सत् गुरु शरण होत जीव जबहीं।
गुरु पद रज मद मंजुल अंजन, नयन अमिय द्रग दोश विभंजन।
नहीं तव आदि मध्य अरु अंता, कह्त सुनत बहुत विधि हरि संता।
अमिय मूर मय चूरन चारू, हरनि समन भव सज परिवारू।
गुरु के वचन होत परतीती, दारुण निवति तही क्षण बीती।
सत्गुरु वचन पियूस समाना, सज्जन करहि श्रवण पुर नाना।
होत महा अनुभूति सुहावन, वेग पतित होवे अति पावन।
कल के दोश शोक भ्रम नासै, उर में ज्ञान ज्योति परकासै।
जन्म-मरण को चक्र छुड़ावै, जीव ब्रह्म को भेद मिटावै।
जाको खोज थके नहीं पायो, ता ईश्वर तुरत मिलायो।
मात-पिता परिजन बहु तेरे, सब होते स्वारथ के घेरे।
गुरु बिन स्वारथ पर उपकारा, तुम्हरे गुण को वरणै पारा।
निश्चय अधिकारी जब पावे, गूण तत्व तव गुरु दुरावे।
तू सबमें सबसे है न्यारा, तेरा हो सब देख नजारा।
सत् गुरु कृष्ण मनुज के वेशा, जीव पार्थ को अस उपदेशा।
मैं था हूँ अरु रहूँ अंगारी, भौतिक तन परिवर्तन कारी।
जीर्ण वस्त्र तज नया सिजाते, तेसे देह बदलते जाते।
द्रश्य बदलता चाहे जैसा, पर द्रष्टा जैसे का तैसा।
काहे शस्त्र न अनल न जारे, ऐसे पवन न पानी गारे।
धरती में ज्यों नाम अनेका, सबमें किन्तु सूत है एका।
तन मिटता मम मरण नहीं है, भूषण मिटता स्वर्ण नहीं है।
राम रूप सत्गुरु ने धारा, तारा से राम वचन उचारा।
छिति जल पावक, गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा।
प्रकट सो तव तुम आगे सोवा, जीव नित्य पुनि काहे रोवा।
तुम सुख देव रूप प्रभु धारो, परीक्षत को मोह निवारो।
ऐ नृप व्यर्थ मोह में भूला, मोह सकल व्याधिन कर मूला।
देह नर्स तू विनसें नहीं, घट में यथा भानु परछाही।
तन को मोह त्याग कर राई, तोकू काल सके नहीं खाई।
तीन काल जी रहे अनंदा, सो तू सदा सच्चिदानंदा।
धरौ अखंड रूप अविनाशी, जय जय सत्गुरु दान प्रकाशी।
जै जै विशम्भर स्वामी, जयति जयति जै अन्तरयामी।
करै ध्यान विशम्भर रूपा, सोकर नहीं परे भव कूपा।
तब द्रगचन्द्र सदा पद किंकर, बसहूं नाथ मम हृदय निरंतर।

# सत्गुरु आरती

मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
जिनकी चरण कमल रज सुन्दर,
भव दुःख सकल निबारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।

दया से जिनकी द्वैत दूर हो,
मन की माया टारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।

वाणी अमृतमय सुन जिनकी,
बुद्धि ब्रह्म को धारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।

पाकर के विज्ञान ज्ञान को,
पूर्ण शान्ति विस्तारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।

गुरु अविनाशी घट–घट वाशी,
दुनिया तुम्हें पुकारती।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।
मिल कीजे सत्गुरु आरती। मिल कीजे।

## पाठकों से अनुरोध

वेदान्त आश्रम के समस्त भक्तों से अनुरोध है कि धार्मिक विषयों पर लेख या कविता, लिखने वाले नव–रचनाकार अपनी रचनाओं को विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता पत्रिका में छपने हेतु भेज सकते हैं। उचित रचनाओं को पत्रिका में स्थान अवश्य दिया जायेगा। रचनायें सुलेख में लिखी हों या फिर टाइप कराकर 1 जून 2023 तक अवश्य भेज दें। सधन्यवाद।

– सम्पादक

लेख व्हाट्सएप नं. : 9415503668 तथा 9455422522 पर भी भेज सकते हैं।

# ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रद्धेय 1008 स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज

जन्म-चतुर्दशी ज्येष्ठ शुक्ल सं. 1991
(15 जून 1934)

ब्रह्मलीन-सप्तमी अगहन शुक्ल सं. 2077
(21 दिसम्बर 2020)

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज परमहंस

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी विश्वम्भरानन्द जी महाराज परमहंस